

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यं जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३	जुलाई २००९ (४, ५ अगस्त को प्रेषित)	अंक-११
संस्थापक-संरक्षक श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज संरक्षक एवं प्रकाशक डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी) प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा 220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545 सहसम्पादक डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001 दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755 प्रबन्ध सम्पादक श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001 0120-2756891, मो०- 09810949921 सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं) डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779 श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989 श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379 श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338 श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852 डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र : श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र० 485331 0-07670-265478, 05198- 224413 वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल) दूरभाष-01334-260323 श्री गीता ज्ञान मन्दिर भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) दूरभाष-0281-2364465 पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता आचार्य दिवाकर शर्मा, 220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545	

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (५१)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८२)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	रासपञ्चाध्यायी विमर्शः	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१०
५.	पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है	परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज	१३
६.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	१५
७.	भगवान श्रीराम की अनुपम झाँकी (कविता)	प्रस्तुति श्रीमती मधुजा लाल	१७
८.	ज्ञान और भक्ति	स्वामी करपात्री जी महाराज	१८
९.	सावन में कजरी के महोच्छव (कविता)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	२३
१०.	गुरु पूजन के शुभ अवसर पर	श्रीललिता प्रसाद बड़थवाल	२३
११.	सच्ची भक्ति	प्रस्तुति- श्री शिवकुमार गोयल	२३
१२.	मनुष्य जीवन की अनमोल सम्पदा है समय	प्रस्तुति- श्री वासुदेव अग्रवाल	२४
१३.	तीन महत्त्वपूर्ण बातें	संकलनकर्ता- श्रीशरद् जी श्रीवास्तव	२६
१४.	नैमिषारण्य तीर्थ कथा आमंत्रण	-	२८
१५.	गुरु पूर्णिमा महोत्सव सोल्लास सम्पन्न	श्री अशोक बत्रा जी	२९
१६.	श्रीरामकथा की अमृतवर्षा होगी	-	३०
१७.	क्या हो मेरे तुम बाबा	श्रीमती बिन्दु भारद्वाज	३०
१८.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी की सिंगापुर यात्रा....	श्री सर्वेश जी गर्ग	३१
१९.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

- ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
- ‘श्रीतुलसीपीठ सौरभ’ मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
- पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
- ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ में ‘पूज्यपाद जगद्गुरु जी’ से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
- ‘श्रीतुलसीपीठ सौरभ’ में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
- ‘श्रीतुलसीपीठसौरभ’ प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
- डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में ‘पूज्यपाद जगद्गुरु जी’ का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
- सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

आचार-विचार अवश्य शुद्ध हो

सम्पूर्ण संसार में ही आचार और विचार दोनों में शुद्धता का अभाव है यह कुतर्क देकर आचार और विचार के पालन में असावधानी कदापि नहीं रखी जा सकती। विश्व की बात छोड़िए भारत का तो आचार और विचार ऐसा अक्षुण्ण धन है जिसकी रक्षा प्रत्येक भारतीय को करनी चाहिए। हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों में आचार अर्थात् शुद्ध आचरण पर पर्याप्त बल दिया गया है। दैनिक जीवन में मनुष्य जिन आचरणों को सम्पन्न करता है उनमें शुद्धता होनी चाहिए अथवा कहिए मानवीय जीवनमूल्यों की रक्षा के लिए निर्धारित धर्मशास्त्रों द्वारा वह आचरण अनुमोदित होना चाहिए। हम वही करें जो हमारे लिए करणीय हो। हम वह कदापि न करें जिसके करने से सभ्य समाज में हमारी निन्दा और चर्चा होती हो। आचार का अर्थ इतना ही नहीं और भी व्यापकता के साथ आज प्रचलित है। जैसे हमारा खान-पान, रहन-सहन आदि। आज का मानव बहुत आचारहीन हो गया है इसीलिए शास्त्रकारों ने कोरे विद्वान को भी आचारहीन देखकर चेताया है-

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः

यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।

जो वेद अपने ज्ञान, उपदेश और आचरण से सबको पवित्र कर देते हैं वही वेद आचारहीन को पवित्र करने में समर्थ नहीं है। आज की आचारहीनता का कहानी कहने से पाप भी लगता है किन्तु सभ्य समाज में दिग्भ्रमित हुए लोगों को आचारहीनता के दुष्परिणामों से सावधान किया जाना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। आज घरों में रसोई शुद्धता के साथ तैयार नहीं की जाती। जूते चप्पल पहनकर रसोई में सब खूब घूमते रहते हैं। प्याज लहसुन आदि अभक्ष्य पदार्थों का प्रयोग निर्भीकता से किया जाता है। यद्यपि अन्न, सब्जियाँ, मसाले, घी, दूध, तेल आदि अनेक खाद्य पदार्थों में घोर निन्दनीय मिलावट, अखाद्य वस्तुओं की विषभरी मिलावट ने मानवमात्र की आचारगत शुद्धता ध्वस्त कर दी है, तथापि जो वस्तु हम छोड़ सकते हैं अथवा अपनी रसोई अथवा थाली से दूर कर सकते हैं उसे अवश्य करना चाहिए। शुद्ध वस्तु का यत्नपूर्वक संग्रह करना चाहिए। खेद है कि आज शुद्ध सात्विक भोजन ग्रहण करने वाले सन्त-महात्मा सद्गृहस्थ सबके घर भोजन ग्रहण करने से बचते हैं। आज भगवान् को भोजन अर्पित करने का प्रचलन 'पुरानी परम्परा' कहकर बन्द सा हो गया है इतना ही नहीं रसोई तैयार करने वाली माता बहिनें रसोई में ही जूटा कर लेते हैं। गौमाता की रोटी, पितरों के नाम पर भोजन, कौए की रोटी, अतिथि को भोजन तो गिनती के घरों में ही देखे जाते हैं। क्या यही प्रगति है? क्या यही विकास है? क्या यही सम्पन्नता है? यदि नहीं तो हम सभी को अपना अन्न (खानपान) शुद्ध करना होगा तभी हमारा मन अच्छे संकल्पों बाला बनेगा। भगवती उपनिषद् के "अन्नमयं हि सौम्यं मनः" वाक्य का भी सम्भवतः यही भाव रहा होगा। हमारा कल्याण तभी सम्भव है जब हम खाना नहीं भोजन करेंगे और भोजन भगवान् को श्रद्धा, शुद्धता और प्रेम से निवेदित करके भोजनप्रसाद मानकर ग्रहण करेंगे। अपने हित का चिन्तन करके ही विश्व के हित का चिन्तन करने का मार्ग भी तभी प्रशस्त होगा। नमो राघवाय।

आचार्य दिवाकर शर्मा

प्रधान सम्पादक

वाल्मीकिरामायण सुधा (५१)

(गतांक से आगे)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

क्योंकि-

तदस्यं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गं प्रभावनम् ।

रामबाणासनक्षिप्तमावहत् परमां गतिम् ॥

और सब लोग तो इन्द्र के विमान पर जाते हैं। यहाँ इन्द्र ही आया है वह अपने विमान पर कैसे जाय? भगवान ने कहा कोई बात नहीं और लोग इन्द्र के विमान पर जाते हैं परन्तु इन्द्र के अंश को जाना है तो मेरे बाणरूप विमान पर बैठकर जायगा। भगवान राम के बाण ने ही बालि को साकेत तक पहुँचा दिया और कहा जाओ आनन्द करो। बालि ने कहा आप कितने करुणामय हैं मैं जानता हूँ आप कभी अनुचित नहीं करेंगे-

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः।

रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः॥

सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः।

इत्येतत् सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि॥

आप दशरथ जी के बेटे हैं, आप में दस गुण अनिवार्य हैं-कुलीनता-आप अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं, सत्त्व से सम्पन्न हैं प्रशस्त तेज से युक्त हैं, चरित ही आपका व्रत है, आप बहुत व्युत्पन्न हैं, आपमें महान उत्साह है आप दृढव्रत हैं आप समयज्ञ हैं क्षेम, दम, तप आदि सब आप में रहते हैं। मैं जानता था कि आप मुझे नहीं मारेंगे क्योंकि मैं दूसरे से लड़ रहा हूँ। पर आपने यह नियम वास्तव में केवल मुझ पर कृपा करने के लिए किया क्योंकि-

जेहि जन पर ममता अति छोहू।

जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू॥

आप करुणा करके क्रोध करना जानते ही नहीं, मैं जानता हूँ कि आप आत्मा का हनन नहीं कर रहे हैं। मैं इन्द्र का पुत्र हूँ आपके बाण लगने से मेरा हृदय पावन हो गया आप धर्मध्वज नहीं हैं अर्थात् आप दिखावे के लिए धर्म का आचरण नहीं करते आप अधार्मिक नहीं परम धार्मिक हैं आप ढाक पात से ढके हुए कूप की भाँति नहीं हैं पाप समाचार आपका नहीं है, आप जो कहते हैं वही करते हैं। मैं आपको सज्जनों का वेशधारी अर्थात् ढोंगी नहीं समझता हूँ आपको मैं प्रच्छन्न धार्मिक नहीं जानता आप तो परम धार्मिक हैं। आप हमको आनन्द देने के लिए इस धराधाम पर प्रकट हुए हैं। भौतिक दृष्टि से कोई हेतु नहीं बन रहे हैं जिनके आधार पर आपने मुझे मारा। मैं आपके देश में कोई अत्याचार नहीं करता, कोई पाप नहीं करता, आपका मैंने कभी अपमान नहीं किया है फिर आप मुझ निरपराध को क्यों मारेंगे? आप मार रहे हैं तो निश्चय ही मेरा कोई न कोई अपराध है उसे भले ही जनसाधारण न जाने पर मैं जानता हूँ। बालि ने कितना सुन्दर कहा है कोई इतना सुन्दर कहेगा? हमारा दुर्भाग्य है कि हम संसार के काम में इतने व्यस्त हो गये हैं कि न तो राम जी के चिन्तन के लिए हमें समय मिलता है और न रामायण जी के चिन्तन का समय मिलता है। यदि दोनों के चिन्तन के लिए समय मिल गया होता तो हमारे जीवन की सारी विडम्बनाएँ चली गई होतीं और भारत का नक्शा बदल गया होता। जब चिन्तन का समय होता है तब हम

सोते रहते हैं। कितना मधुर कहा है बालि ने, ऐसा कोई कहेगा ही नहीं। प्रभो! मैं जानता हूँ नय, विनय, सत्य, क्षमा आदि। काम के विषय में भी मैं भलीभाँति जानता हूँ। भगवान् शंकर ने तीसरे नेत्र से काम को जलाया इसका रहस्य क्या किसी को पता है? पूछो जाकर नागेश्वर नाथ से कि तीसरे नेत्र से क्यों जलाया? यदि काम को जलाना था तो दाहिने सूर्यनेत्र से जलाते फिर तीसरे से क्यों? इसलिए जलाया कि राम में र का उच्चारण मूर्धा से होता है (ऋतुरषाणां मूर्धा) वही श्रीराम का र शिव जी का मूर्धन्य अग्नि है तीसरा नेत्र राम। केवल राम के र से शिव जी महाराज ने रामाग्नि को प्रकट करके-हेतु कृशानु भानु हिमकर को। राम नाम से प्रकट हुई अग्नि के द्वारा काम को जलाया। इससे कामस्य प्रधानं भस्मीभवनं यस्मात् इति नवीनं व्याख्यानम्।

सत्त्वं कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः।

राजवृत्तेषु संकीर्णः शरासनपरायणः।।

क्या राम जी क्रोधी हैं? नहीं, उनकी कृपा से जीव का कोप नष्ट हो जाता है बालि कहता है-आप प्राणों में स्थित हैं, सबके प्राणों के पति हैं-

तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति।

किस विधि मिलूँ दयामय तुमको मैं कुमति।।

राजधर्म में आप संकीर्ण नहीं रहते। शरासन ही आपका परायण है- 'प्रणवं धनुः शरो ह्यात्मा' भागवत जी के लिए उपनिषद् का ज्ञान आवश्यक है। टीका से भागवत जी नहीं लगते उनके लिए भक्तिभाव चाहिए। भक्त्या भागवतं शास्त्रं न व्युत्पत्त्या न टीकया।

पकौड़ी खाकर चाय पीकर वाल्मीकि रामायण नहीं लगती, रामायण तो चरणोदक पीकर लगती है। प्रभु मैं आपको जानता हूँ आप कितने कृपालु हैं। बालि बहुत करुण बोल रहा है-

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा।

प्रमादा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा।

जब बालि ने इतनी प्रशंसा की तो श्रीराम ने कहा बालि! मैंने तुमको मार दिया मैं शठ हूँ। बालि ने कहा आप ऐसा न कहें। आज मैं अपने सम्बन्ध का प्रयोग करूँगा राघव! मैं इन्द्र का बेटा हूँ आप दशरथ जी के बेटे हैं। आपका बड़ा भाई भी मैं हूँ। आप प्रायश्चित्त की भाषा क्यों बोल रहे हैं?

शठो नैकृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः।

कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना।।

राघव! कारण गुण कार्यगुण में आते हैं। आपका जन्म ऐसे व्यक्ति के द्वारा हुआ है, कितना व्युत्पन्न है यह बालि, इसने पंचमी का प्रयोग नहीं किया क्योंकि दशरथ जी के शरीर की धातु से तो राम जी का जन्म ही नहीं हुआ है, षष्ठी का प्रयोग भी नहीं किया क्योंकि आप किसी के सम्बन्धी नहीं हैं आप भले ही मान लें। केवल मरण में तृतीया की। अर्थात् केवल दशरथ जी ने जन्म में आपकी सहायता की है। 'साधकतमम् करणम्' है, मनु के रूप में दशरथ जी ने तपस्या करके आपको पुत्र रूप में प्राप्त किया है। उन्होंने तो यही कहा था कि-

चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव।

हे प्रभो! उन्होंने आपको ब्रह्मरूप में देखा था इसलिए आप शठ नहीं हैं आप क्षुद्र (तुच्छ) नहीं हैं आप तो सबसे बड़े हैं-

प्राणनाथ रघुनाथ गुसाईं।

जो बड़ होत सो राम बड़ाई।।

क्या मेरे मानने से आप शठ हो जायेंगे? आपको प्रायश्चित्त क्या लगा? कुछ नहीं आपका मन निरन्तर पवित्र है। आप पापी नहीं हैं क्योंकि महात्मा दशरथ जी ने तपस्या करके आपको प्रकट किया है। पिता

महात्मा है तो बेटा परमात्मा है। इस प्रकार पूरा अर्थ उलट गया। आप बड़े कृपालु हैं। बालि ने एक बात इतनी करुण कही कि फूट फूट कर रोना पड़ता है। बालि बोला-

उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रदर्शितः।

नापकारिषु पश्येयं विक्रमं ते नरेश्वर।

हम लोग अपकारी हैं, हमने पूरा मर्यादा का उल्लंघन किया पर मेरे जैसे पापी के बुलाने पर आप चले आये। बड़े बड़े उदासीन मुनिजन उन चरणों का विन्यास देखने के लिए तरसे पर उनके पास आप नहीं गये मेरे पास चले आये इतनी बड़ी कृपा कौन करेगा?

त्यक्त्वा सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं

धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

सरकार! मैं आपका कितना ऋणी हूँ। मेरा रोम रोम आपका ऋण नहीं चुका सकता। कौन कहता है कि मैं आपसे बलवान था-

अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया।

यहाँ काकुवक्रोक्ति है। क्या यदि मेरे सामने आप लड़ते तो क्या आपको मैं यमलोक भेज सकता था? मैं आपको कैसे यमलोक भेज सकता था जिसके रोम रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं तो मैं आपको कहाँ भेजूँगा?

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया

रोम रोम प्रतिवेद कहै।

मम उदर सो वासी यह उपहासी

सुनत धीर मति थिर न रहै।

श्लोकों का ठीक अर्थ लगाने के लिए राममन्त्र का जप, गायत्री जी का जप करना होता है। भिन्न भिन्न व्रत करने होते हैं-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।

दक्षिणया श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमीहते॥

व्रत से व्यक्ति को दीक्षा मिलती है, दीक्षा से दक्षिणा अर्थात् कुशलता कुशलता से व्यक्ति को श्रद्धा यानी आस्था, तब सत्यस्वरूप आनन्दकन्दमुकुन्द सतत मुनिजन परिपीत चरणारविन्दामन्दमकरन्द कौसल्यानन्दवर्धन मोचितभक्तभवबन्धन सरजूपुलिनबिहारी दशरथाजिरबिहारी मुनिमनहारी रघुनाथ जी के दर्शन होते हैं। राघव! कितने कृपालु हैं आप, आपकी कृपालुता का मैं वर्णन कैसे करूँ-

त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः।

प्रसुप्तपन्नगेनैव नरः पापवशं गतः॥

कौन कहता है कि आपने मुझे छिपकर मारा। जब आपके धनुष की टंकार से पक्षिगण भाग गये तो क्या मैं बहरा था। आपने मुझे अपने एक ही बाण के विमान पर बिठाकर साकेत लोक भेज दिया। अब मैं अमरावती लौटकर नहीं जाऊँगा। जिस प्रकार सोये हुए पापी को शेषनारायण कहीं पहुँचा सके उसी प्रकार आपने मुझ पापी को साकेतलोक भेज दिया। बालि ने पुनः श्रीराम जी से निवेदन किया-

काममेवंविधोलोकः कालेन विनियुज्यते।

यदि अधर्म से मैं मारा गया होता तब अनुचित होता। दुष्टवध आपका धर्म है मैंने दुष्टता की थी इसलिए आने मुझे मारा तो उचित ही किया। अब मेरे जाने पर सुग्रीव राजा बनेगा-

क्षमं चेद् भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम्।

अब आप मेरे उत्तरकाल की क्रिया का विचार कीजिए। इतना कहकर एक बार राघव को निहारकर बालि चुप हो गया। कोई निन्दा नहीं की-

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः

शराभिघाताद् व्यथितो महात्मा।

समीक्ष्य रामं रविसंनिकाशम्
तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः॥

इस प्रकार वानरराज बालि सूर्य के समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखकर चुप हो गया। उसका मुख सूख गया था और बाण के आघात से उसे बहुत पीड़ा हो रही थी। आगे बालि कहेगा भी कि-

त्वत्तोऽहं वधमाकांक्षन् वार्यमाणोऽपि तारया।
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुमागतः॥

मैं चाहता ही था कि आपके हाथों मेरी मृत्यु हो जाय। तारा के मना करने पर भी मैं सुग्रीव से द्वन्द्व युद्ध करने आ गया। आपको लग गया कि सुग्रीव में वह क्षमता नहीं है कि मुझको स्वर्ग भेज सके आपने मुझ पर कृपा की। जब इतनी प्रशंसा कर दी तो भगवान राम ने सोचा कहीं गड़बड़ न हो जाय, कहीं मेरा भगवत्त्व स्पष्ट न हो जाय तब रावण कह देगा कि हम भगवान के हाथों नहीं मरेंगे इसलिए भगवत्त्व को अभी छिपाकर रखना चाहिए। अतः भगवान थोड़ी सी नरलीला करते हुए कहते हैं कि अब मैं तुम्हें मारने का कारण बताता हूँ-

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः।

भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥

तुमने धर्म को क्लिष्ट किया है आचरण को मटियामेट करके रख दिया है। तुमने सनातन धर्म का उल्लंघन किया है। शास्त्र कहते हैं-

औरसीं भगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य ह।

प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधःस्मृतः॥

स्मृति ने मुझे आज्ञा दी है कि अपनी बेटी, बहिन और अपनी अनुजवधू इनके प्रति जो कुदृष्टि करता है उसके लिए वध ही दण्ड है। इसलिए मैंने तुम्हें दण्ड दिया। तुम तो शाखामृग हो तुम्हें किसी भी प्रकार

दण्ड देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे मन में न कोई ताप है, न क्लेश है, न क्रोध है। सुग्रीव से मैंने मित्रता की थी अतः तुमसे मैं मित्रता नहीं कर सकता था क्योंकि तुम मित्र होने योग्य नहीं थे। ऐसे चरित्रहीन से मैं कैसे मित्रता करता। सुग्रीव से मेरे वंशानुगत गुण भी मिल रहे थे क्योंकि वे सूर्यपुत्र हैं और मैं भी सूर्यवंशी हूँ। सुग्रीव से मित्रता के लिए हनुमान जी ने संस्तुति की थी इसलिए भी मैंने उनसे मित्रता की। अतः तुम इस दण्ड का अनुमोदन करो।

एवमुक्तस्तु रामेण प्रव्यथितो भृशम्।

न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः॥

इस प्रकार जब रघुनाथ जी ने कहा तब बालि बहुत दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मैंने प्रभु को इतना कठोर क्यों कहा? भगवान राम को कठोर वचन सुनने का स्वभाव नहीं है। बालि ने ध्यान करके भी देखा कि श्रीराघव में कोई दोष नहीं है। राघव जी ने उचित ही किया है। एक और जनश्रुति कहाँ से फैली कि श्रीराम ने बालि को छिपकर मारा था इसलिए बालि ने बहेलिये का रूप धारण कर भगवान श्रीकृष्ण से बदला लिया इसका वर्णन मुझे कहीं नहीं मिला यह अपलाप मात्र है। मानो बालि मर गया पर कुछ धूमकेतुओं को वकील बनाकर चला गया कि तुम हमारी वकालत करते रहना। जब यह कहा गया है कि- 'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। भगवान के धाम जाकर कोई लौटता नहीं है तो बालि कैसे लौट आया? श्रुति बार बार कहती है- 'न सः पुनरावर्तते'। बालि ने कहा सरकार! मेरी एक बात मानने की कृपा करें -

मामप्यवगतं धर्माद् व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम्।

धर्मसंहितया वाचा धर्मं च परिपालय।।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८२)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

अर्थात् जिस प्रकार पूर्व दिशा चन्द्रमा को धारण करती है उसी प्रकार वसुदेव द्वारा मानस संकल्प से गर्भाधान किये हुए नित्य अंशों वाले सबको आनन्द देने वाले आत्मा के समान अणु आकार वाले जगत् का मंगल करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को भगवती देवकी ने गर्भ में धारण किया।

‘मनस्तः’ शब्द में तृतीयार्थ में ‘तसि’ प्रत्यय हुआ है। यदि कहें कि मनस्तः का अन्वय ‘आनन्दकरम्’ के साथ कर लिया जाय और अर्थ किया जाय कि जैसे मन से चन्द्रमा को पूर्ण दिशा ने धारण किया था तो यह कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि चन्द्रमा को मन से पूर्व दिशा ने धारण किया हो ऐसा प्रमाण कहीं मिलता नहीं। चन्द्रमा मनसो जातः यह आध्यात्मिक पक्ष है। चन्द्रमा के अवतारवाद में तो अत्रि के नेत्र से चन्द्रमा का उत्पन्न होना ही पुराण प्रसिद्ध है। इसीलिए कालिदास भी ने “अथ नयसमुत्थं ज्योतिरद्रेखिवद्यौः” इस प्रकार कहा। अतः मनस्तः का अन्वय सूरसुतेन के साथ ही होगा। इसलिए आत्ममाया का अर्थ है जीवात्माओं पर कृपा करके अपने स्वरूप को गिराये (च्युत) किये बिना ही भगवान् अवतार लेते हैं। जो शंकराचार्य जी ने गीताभाष्यभूमिका में कहा- वे भगवान् ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, तेज, वीर्य से सम्पन्न अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मूल प्रकृति रूप माया को वश में करके अजन्मा, अव्ययात्मा और जीवों के ईश्वर होकर भी

लोगों पर अनुग्रह करते हुए जन्म लिए हुए की भाँति और देहवान की भाँति प्रतीत होते हैं अर्थात् न तो उनका जन्म होता है और न उनके कोई शरीर होता है। और इस पर जो मधुसूदन सरस्वती ने अपनी कारिका में कहा कि जो अनेक शक्ति सम्पन्न माया नामक कारणोपाधि है वही भगवान का देह है ऐसा भाष्यकार का मत है और निर्गुण सच्चिदानन्द रसघन मुझ देहदेही भाव शून्य भगवान वासुदेव में देह की प्रतीति माया मात्र ही है। यही उस कारिका की व्याख्या भी की। कुछ लोग नित्य निरवयव परमात्मा में देहदेहीभाव की कल्पना करते हैं परन्तु उनके कथन में कोई युक्ति नहीं है फिर भी उन्हें बोलते हुए हम मना नहीं ही कर सकते। इस न्याय से उनका अपवाद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार श्री शंकराचार्य और मधुसूदन सरस्वती का कथन पूर्णतः अनर्गल है। यदि भगवान के शरीर को मायामय मान लिया जाय तो उसमें मिथ्यात्व की आपत्ति होगी। इसलिए सच्चिदानन्द भगवान के शरीर को मायामय मान लेने पर उसमें ध्यान धारणा आदि की असिद्धि हो जाने पर, वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, इत्यादि श्रुतियों में कोई प्रामाणिकता नहीं रह जायेगी। यदि शंकराचार्य एवं मधुसूदन सरस्वती के अनुसार नित्यकारणोपाधि भगवान का शरीर है तो फिर उपाधि को व्यावर्तक मानना पड़ेगा और भगवान व्यक्ति। यदि कहो कि कोई आपत्ति नहीं और यदि भगवान ही

व्यावर्त्य हैं तब तो यः सर्वज्ञः सर्ववित् इत्यादि हजारों श्रुतियों में अप्रमाण्य आ जायेगा। दूसरी बात यह भी है कि यदि नित्य कारणोपाधि को भगवान का शरीर माना जायेगा तो किसका कौन आश्रय है, यह भी तो बताना पड़ेगा। यदि कहें कि माया ही ब्रह्म को आश्रय देगी तो यह असम्भव है। किसी ने अंधकार को सूर्यनारायण को आश्रय करते नहीं देखा और कहीं भी शरीरी को शरीर का आधार होते हुए न देखा न सुना। यदि कहें कि भगवान ही माया का आश्रय करते हैं तो फिर माया का स्वरूप बताना पड़ेगा। यदि कहें कि सद् और असद् दोनों से अनिर्वचनीय वस्तु ही माया का स्वरूप है तो फिर जो निश्चित पदार्थ है वह अनिर्वचनीय वस्तु को कैसे आश्रय बनायेगा। भला शून्य आकाश दीवार का अवलम्बन कैसे बन सकता है। यदि कहो कि माया अनित्य है तो फिर नित्य परमात्मा अनित्य माया का आश्रय कैसे लेंगे। यदि कहोगे कि माया भी नित्य है तो फिर माया की नित्यता में प्रमाण के रूप में कोई श्रुति उपस्थित करनी पड़ेगी। यदि कहो माया असत् है तो सत् स्वरूप परमात्मा उसका आलम्बन कैसे करेंगे। झूठे माया को ही भगवान का शरीर मानेगे तो श्रुतियों का विरोध होगा। वे भगवान कहाँ रहते हैं? ऐसा पूछने पर सनत्कुमार ने कहा अपनी महिमा में रहते हैं। माया भगवान की महिमा नहीं है। यद्यपि इसलिए भगवान में देह-देही भाव सिद्ध नहीं होता। फिर भी अनेक श्रुति वचनों के अनुरोध से भगवान की इच्छामय शरीर की परिकल्पना की जा सकती है। क्योंकि श्रुति वचनों पर कोई युक्ति या तर्क नहीं किया जाता। वेद में तो हेतु पूछने वाला भी नास्तिक कहा जाता है जैसे “आकाशवत्” सर्वगतश्च नित्यः।

“मनोमयः प्राण शरीर आत्मा। ‘आकाशशरीरं’ ब्रह्म। इत्यादि श्रुतियाँ भगवान के शरीर में प्रमाण हैं। आकाश-स्तल्लिङ्गात् १/१/२३ यह ब्रह्मसूत्र भी भगवान के शरीर में प्रमाण है। भगवान के अवयवावयी भाव के पक्ष में पुराणों में हजारों प्रमाण उपलब्ध हैं जो नित्य सिद्ध होता है उसके लिए युक्तियों की कोई आवश्यकता नहीं होती। प्रचण्ड किरणों से सम्पन्न मध्याह्न के सूर्यनारायण को सिद्ध करने के लिए क्या किन्हीं युक्तियों की आवश्यकता पड़ती है? फिर भी श्रुतियों में भगवान् के हस्त, चरण, मुख आदि अवयवों के वर्णन मिलते हैं जैसे ‘सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादः’

बहुत क्या कहें यदि भगवान को अवयवहीन ही माना जायेगा तो फिर मधुसूदन सरस्वती की ‘वंशी विभूषित करात्’ गीता १८/६६ मधुसूदनी रचना का क्या होगा। अवयवहीन भगवान में वंशीविभूषितकरत्व कैसे घटेगा। जब उनके पास हाथ ही नहीं तो वंशी बजायेंगे कैसे। यदि कहा जाय कि यह असत्य है तो फिर इसके रचयिता महोदय भी असत्यवादी हैं। इसलिए असत्यवादी व्यक्ति के सभी वाक्य असत्य होंगे। इसलिए असत्यवादियों के साथ भाषण करना व्यर्थ है। यदि कहें कि जो सावयव होता है वह अनित्य होता है क्योंकि वह कार्य है। जैसे घड़ा अवयववान होकर अनित्य है। इस कार्यकरण भाव के अनुसार ब्रह्म अनित्य ‘अवयवत्वात्’ इस अनुमान से ब्रह्म में अनित्यता आने लग जायेगी। तो ऐसा नहीं होगा क्योंकि बहुत स्थलों पर अनुमान व्यवहार में खरा नहीं उतरता जैसे ‘योनिमत्त्व रूप हेतु से यदि भोगत्व सिद्ध किया जाय तो वह भगिनी और पुत्री में भी आपतित होने लगेगा। जबकि वहाँ हेतु है साध्य नहीं। इसलिए श्रौत सिद्धान्तों में अनुमान प्रमाण नहीं बनता।

क्रमशः.....

रासपञ्चाध्यायी विमर्शः (१)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

रासपञ्चाध्यायी आध्यात्मिक जगत का एक ऐसा लोकोत्तर चिन्तनदर्शन महार्णव जिसमें आकण्ठनिमग्न अवगाहन करने वाले असंख्य भावुक मनीषी और प्रेमीजन धन्यता और कृतार्थता का निरन्तर अनुभव करते हैं—सनातनधर्म की अक्षुण्ण धरोहर है। हजारों वर्षों से भागवत तत्त्ववेत्ता आप्तपुरुषों ने अपनी पराऋतम्भराप्रज्ञाप्रसूत भावभूमि पर नूतनभावों को प्रकट करके भगवान को भी भारत की भक्ति की भविष्यता के प्रति आकृष्ट किया है। ऐसे ही आप्तपुरुषों की सरणी में अग्रगण्य, वर्तमान काल की आध्यात्मिक चिन्तनधारा के अद्वितीय मनीषी एवं भागवत को व्युत्पत्ति तथा टीका की अपेक्षा अपनी भक्ति से निरन्तर लगाने के अभ्यस्त पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का अनुपम निबन्ध “रासपञ्चाध्यायी विमर्शः” श्रीतुलसीपीठसौरभ के सुधीपाठकों के आनन्दवर्धन के लिए क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है। [प्रधान सम्पादक]

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय श्रीसीतायाः पतये नमः॥१॥
कृष्णाय कृष्णचन्द्राय कृष्णदेवाय सात्वते।
यदुनाथाय नाथाय श्रीराधायाः पतये नमः॥२॥
नमस्यामः शुकाचार्यं वासिष्ठं व्याससम्भवम्।
पिबामो यन्मुखाम्भोजच्युतं भागवतामृतम्॥३॥
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम्॥४॥
वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिंधुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥५॥

शुकाचार्य के पदकमल बार बार शिर नाय।
कहउँ रास लीला मुदित सरस रहस्य सुहाय॥६॥

परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म भगवान श्रीसीताराम जी की कृपा तथा परम परमेश्वर, सर्वसर्वेश्वर योगेश्वर रासबिहारी श्रीराधाकृष्ण भगवान की अनुकम्पा से आज हम एक ऐसे चरित्र की चर्चा करने जा रहे हैं जिस पर प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि शतशः संदेह बने रहे हैं। कहते सभी हैं पर निःसंदिग्ध कोई नहीं कहना चाहता और न कोई कहने का साहस करता है। सनातन धर्म की एक विडम्बना भी यही है कि लोग वास्तविकता के लिए न तो साहस जुटा पाते हैं और न ही वास्तविकता की जिज्ञासा कर पाते हैं। इसलिए बहुत से सिद्धान्त पुस्तकों में तिरोहित ही रह जाते हैं। पहले की अपेक्षा आज की परिस्थिति बहुत ही विचित्र परिवेश में परिवर्तित हो गई है। पहले प्रायशः अन्धविश्वास से काम चला लिया जाता था और यह कह दिया जाता था कि “हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः” हेतु पूछनेवाला नास्तिक होता है, पर शास्त्रों में हेतु नहीं पूछना चाहिए। वहाँ क्यों? कैसे? क्या? कब? कहाँ से? किसलिए इत्यादि प्रश्नों की न तो कोई उपयोगिता है और न ही कोई आवश्यकता। इस भय के कारण सामान्य व्यक्ति या तो दब जाता था या अपनी भावनाओं को दबाकर उन्हें समाप्त कर देता था। तर्क की शक्ति समाप्त हो गई और लगता यही है कि इन्हीं कारणों से इस पवित्र अजेय भारत देश को लगभग दो हजार वर्षों पर्यन्त दासता देखनी पड़ी। दो हजार वर्ष पर्यन्त परतंत्रता की शृंखला में रहना पड़ा किन्तु अब युग बदल चुका है, परिस्थितियाँ भिन्न हो

गई हैं, चिन्तन भिन्न हो गया है। एक ओर भौतिकता का बोलबाला है तो दूसरी ओर कम्प्यूटरीकरण का एक अभूतपूर्व प्रभाव। आज का बालक भी तो जन्म लेते ही कम्प्यूटराइज्ड हो जाता है, कम्प्यूटरीकृत हो जाता है। इसलिए अब “हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः” की बहुत उपयोगिता नहीं रह गई है। यद्यपि यह उपयोगिता पहले भी बहुत नहीं थी। वहाँ “हेतुप्रष्टा तु नास्तिकः” का इतना ही तात्पर्य था कि वेदमंत्रों में बहुत कुतर्क नहीं करना चाहिए। पर इसका यह तात्पर्य नहीं समझ लेना चाहिए कि सुतर्कों से भी मुख मोड़ लिया जाय, क्योंकि इस सिद्धान्त के समाधान के लिए मनु ने दोनों बातें कही हैं। पहले कह दिया यह “यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतरः” अर्थात् जो तर्कों अर्थात् जिज्ञासाओं के साथ धर्म का अनुसन्धान करता है वही धर्म को जानता है दूसरे नहीं, परन्तु उस तर्क में भी उनको बहुत स्वतंत्रता उच्छृंखलता अभीष्ट नहीं है। हमारी भारतीय मानसिकता की एक सबसे बड़ी विशेषता रही है कि हम स्वतंत्रता चाहते हैं पर स्वच्छन्दता नहीं, क्योंकि स्वतंत्रता मनुष्य का अधिकार है और स्वच्छन्दता पशु का धर्म है। स्वच्छन्द तो वही हो सकता है जो शरीरधर्म से उठ जाये, जैसे मुनिगण, जैसे परमेश्वर भगवान्। हम न तो ऋषि हैं और न ही भगवान्, हम मनुष्य हैं एक मध्यमवर्गीय प्राणी हैं। अतः हमारी परिस्थिति में स्वतन्त्रता ही उपयोगी होगी स्वच्छन्दता नहीं। स्वतन्त्रता का अर्थ होता है अपने कर्म के अनुसार कार्यपद्धति का निर्धारण। ‘स्व’ का अर्थ है आत्मीय और हमारे आत्मीय हैं भगवान्। उनका तन्त्र है वेद और वेदानुमोदित स्मृतियाँ तथा पुराण और अन्य वैदिक साहित्य। इसलिए हम स्वतन्त्रता से विचार करने जा रहे हैं स्वच्छन्दता से नहीं और न ही हम किसी को भी स्वच्छन्दता से विचार करने की अनुमति देंगे। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि यह एक आधिकारिक

वक्तव्य है। यह कोई ऐसा-वैसा वक्तव्य नहीं है। किसी अनुत्तरदायी वक्ता का वक्तव्य नहीं है। यह जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य का वक्तव्य है। जिसमें निष्पक्ष वैज्ञानिकपद्धति और एक प्रातिभ परिवेश में सनातन धर्म की व्याख्या की जायेगी और यह व्याख्या एक उत्तरदायी व्यक्ति के द्वारा की जायेगी और इसका एक-एक शब्द शास्त्रसम्मत होगा और प्रत्येक सिद्धान्त पर मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा इसलिए इस वक्तव्य को निःस्संदेह और निर्भ्रान्त रूप से सुनना चाहिए। यह कहा जा चुका है कि सनातनधर्म का जो मूल सिद्धान्त है उसके स्रोत हैं भगवान् वेद और वेदों को सनातनधर्म मानस अपौरुषेय मानता है। इन्हें किसी पुरुष ने नहीं बनाया। ये परमात्मा भगवान् श्रीसीताराम जी के और श्रीसीतारामाभिन्न भगवान् श्रीराधाकण्ठ जी के निश्वासभूत हैं, उनके स्वाभाविक श्वास हैं वेद। इसलिए श्रीरामचरितमानस में श्रीहुलसीहर्षवर्धन गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने भी यह सिद्धान्तरूप में स्वीकार कर लिया कि वेद भगवान् के निश्वास हैं।

जाकी सहज श्वास श्रुति चारी।

सोइ हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

मानस १/२०४/५

और यह बात उपनिषदों में भी कही गई है। यस्य निःश्वासितमेतत् ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदः अथर्ववेदश्च। वेद भगवान् के निश्वास हैं। निश्वास का तात्पर्य यह है कि जैसे किसी की भी सत्ता का अनुमान उसके श्वास के आधार पर होता है। सामान्य भाषा में कहा जाता है कि जब तक श्वास चलता है तब तक व्यक्ति जीता है। श्वास बन्द होने पर व्यक्ति मरा हुआ समझ लेना चाहिए, इसी प्रकार श्वासरूप वेद ही परमात्मा की सत्ता की प्रमाण में परम प्रमाण हैं। क्या प्रमाण हैं परमात्मा हैं? उत्तर हुआ वेद। जैसे

श्वास से हम किसी व्यक्ति की सत्ता का निश्चय करते हैं। अतएव यदि वेद ही हमारे परम प्रामाणिक हैं और गोस्वामी जी ने तो डिम-डिम घोष करते हुए कहा कि वेद की महिमा अतुलनीय है औरों की बात को छोड़ो यदि भगवान भी वेद के विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं तो सनातनधर्मी उन्हें नहीं स्वीकारेगा। जैसे बुद्धावतार को हमने माना पर बुद्ध की बात हमें इसलिए मान्य नहीं हुई क्योंकि वह वेद के विरुद्ध थी। आज भगवान् बुद्ध की पूर्णिमा है और आज ही हम इस वक्तव्य का प्रारम्भ कर रहे हैं। हम भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हैं, भगवान बुद्ध को मानते हैं, पर भगवान बुद्ध की बात मानने में हमें इसलिए संकोच होता है कि वे कहीं-कहीं वेद के विरुद्ध कुछ कहना चाहते हैं। यहाँ यह बात सुगमता से समझ लेनी चाहिए कि वैदिक भारतीय मानस मातृपक्षीय है। हम पिता की अपेक्षा माता को श्रेष्ठ मानते हैं और पिता की सत्ता में हम माता को ही परम प्रमाण मानते हैं और माता की सत्ता की प्रामाणिकता की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' अर्थात्

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए श्रुति की सत्ता में हमें कोई सन्देह नहीं है। परमात्मा की सत्ता का परम प्रमाणभूत सिद्धान्त समझाती है हमारी श्रुति माता। प्रायशः पिता माता पर अत्याचार करता है तो पुत्र माता का पक्ष लेता है, पिता का नहीं ठीक यही बात यहाँ भी है कि जब भगवान् किसी कारण से यदि श्रुति की बात नहीं मानना चाहेंगे तो हम भगवान् का पक्ष न लेकर भगवती श्रुति, अपनी माता का पक्ष लेंगे और लिया भी। बुद्ध से कह दिया ठीक है आप यदि हमारी माँ की निन्दा कर रहे हैं तो हम आपको यहाँ से विदा देना चाहते हैं, जाइये जहाँ जाते बने। भिन्न-भिन्न स्थान पर करिये प्रचार। हम आपकी दयालुता को मानते हैं, परन्तु वेद विरुद्ध वक्तव्य को कदापि हम नहीं मानेंगे। इसीलिए दोहावली में गोस्वामी जी ने कहा-

अतुलित महिमा वेद की तुलसी कीन्ह विचार।
जो निन्दित निन्दित भए विदित बुद्ध अवतार।।

क्रमशः.....

अहंकार पतन का कारण

धन और देहबल के अहंकार में डूबकर जो धर्म तथा मर्यादाओं का उल्लंघन कर मनमाना उच्छृंखल आचरण करते हैं, एक न एक दिन वे दुर्गति को अवश्य प्राप्त होते हैं।

धन का अहंकार मनुष्य को अंधा बनाकर उससे बड़ा-से-बड़ा घोर पाप-कर्म करा देता है। धन के मद में अंधा हुआ व्यक्ति कई बार तो छोटे-बड़े का अन्तर भूलकर, अपने कर्तव्य को भुलाकर अक्षम्य अपराध तक कर बैठता है। वह यह भूल जाता है कि

धन की चकाचौंध ने उसकी आँखों पर पर्दा डाला हुआ है तथा वह जो घोर कुकृत्य, धर्मविरुद्ध आचरण करने में नहीं हिचकिचा रहा, यही उसके वंशनाश तथा घोरपतन का कारण बनने वाले हैं। अतः धन के मद में अन्धे कदापि नहीं बने।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य धन, सत्ता या ऐश्वर्य नहीं, भगवान की कृपा प्राप्ति होना चाहिए। सीमा से अधिक सम्पत्ति विपत्ति का कारण अवश्य बनती है।

-[एक सत्सङ्ग का सुमन]

□□□

पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है

□ परमवीतराग स्वामी रामसुखदास जी महाराज

एक सुनी हुई घटना है। किसी गाँव में एक सज्जन रहते थे। उनके घर के सामने एक सुनार का घर था। सुनार के पास सोना आता रहता था और वह गढ़कर देता रहता था। ऐसे वह पैसे कमाता था। एक दिन उसके पास अधिक सोना जमा हो गया। रात्रि में पहरा लगाने वाले सिपाही को इस बात का पता लग गया। उस पहरदार ने रात्रि में उस सुनार को मार दिया और जिस बक्से में सोना था, उसे उठाकर चल दिया। इसी बीच सामने रहने वाले सज्जन लघुशङ्का के लिये उठकर बाहर आये। उन्होंने पहरदार को पकड़ लिया कि तू इस बक्से को कैसे ले जा रहा है? तो पहरदार ने कहा- 'तू चुप रह, हल्ला मत कर। इसमें से कुछ तू ले ले और कुछ मैं ले लूँ।' सज्जन बोले- 'मैं कैसे ले लूँ? मैं चोर थोड़े ही हूँ।' पहरदार ने कहा- 'देख, तू समझ जा, मेरी बात मान ले, नहीं तो दुःख पायेगा।' पर वे सज्जन माने ही नहीं। तब पहरदार ने बक्सा नीचे रख दिया और उस सज्जन को पकड़कर जोर से सीटी बजा दी। सीटी सुनते ही और जगह पहरा लगाने वाले सिपाही दौड़कर वहाँ आ गये। उसने सबसे कहा कि 'यह इस घर से बक्सा लेकर आया है और मैंने इसको पकड़ लिया है।' तब सिपाहियों ने घर में घुसकर देखा कि सुनार मरा पड़ा है। उन्होंने उस सज्जन को पकड़ लिया और राजकीय आदमियों के हवाले कर दिया। जज के सामने बहस हुई तो उस सज्जन ने कहा कि 'मैंने नहीं मारा है' उस पहरदार सिपाही ने मारा है।' सब सिपाही आपस में मिले हुए थे, उन्होंने कहा कि 'नहीं इसी ने मारा है, हमने खुद रात्रि में इसे पकड़ा है,' इत्यादि।

मुकदमा चला। चलते-चलते अन्त में उस सज्जन के लिये फाँसी का हुक्म हुआ। फाँसी का हुक्म होते ही उस सज्जन के मुख से निकला- 'देखो, सरासर अन्याय हो रहा है भगवान के दरबार में कोई न्याय नहीं। मैंने मारा नहीं मुझे दण्ड हो और जिसने मारा है वह बेदाग छूट जाय, जुर्माना भी नहीं; यह अन्याय है।' जज पर उसके वचनों का असर पड़ा कि वास्तव में यह सच्चा बोल रहा है, इसकी किसी तरह से जाँच होनी चाहिये। ऐसा विचार करके उस जज ने एक षड्यन्त्र रचा।

सुबह होते ही एक आदमी रोता-चिल्लाता हुआ आया और बोला- 'हमारे भाई की हत्या हो गयी, सरकार! इसकी जाँच होनी चाहिये।' तब जज ने उसी सिपाही को और कैदी सज्जन को मरे व्यक्ति की लाश उठाकर लाने के लिये भेजा। दोनों उस आदमी के साथ वहाँ गये, जहाँ लाश पड़ी थी। खाट पर लाश के ऊपर कपड़ा बिछा था। खून बिखरा पड़ा था। दोनों ने उस खाट को उठाया और उठाकर ले चले। साथ का दूसरा आदमी खबर देने के बहाने दौड़कर आगे चला गया। तब चलते-चलते सिपाही ने कैदी से कहा- 'देख, उस दिन तू मेरी बात मान लेता तो सोना मिल जाता और फाँसी भी नहीं होती, अब देख लिया सच्चाई का फल?' कैदी ने कहा- 'मैंने तो अपना काम सच्चाई का ही किया था, फाँसी हो गई तो हो गई! हत्या की तूने और दण्ड भोगना पड़ा मेरे को! भगवान् के यहाँ न्याय नहीं!'

खाट पर झूठमूठ मरे हुए के समान पड़ा हुआ आदमी उन दोनों की बातें सुन रहा था। जब जज के सामने खाट रखी गयी तो खून भरे कपड़े को हटाकर वह उठ खड़ा हुआ और सारी बात जज को बता दी

कि रास्ते में सिपाही यह बोला और कैदी यह बोला। यह सुनकर जज को बड़ा आश्चर्य हुआ। सिपाही भी हक्का-बक्का रह गया। सिपाही को पकड़कर कैद कर लिया गया। परन्तु जज के मन को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कैदी को एकान्त में बुलाकर कहा कि 'इस मामले में तो मैं तुम्हें निर्दोष मानता हूँ पर सच-सच बताओ कि इस जन्म में तुमने कोई हत्या की है क्या?' वह बोला- बहुत पहले की घटना है। एक दुष्ट था, जो छिपकर मेरे घर मेरी स्त्री के पास आया करता था। मैंने अपनी स्त्री को तथा उसको अलग-अलग खूब समझाया पर वह माना नहीं। एक रात वह घर पर था और अचानक मैं आ गया। मेरे को गुस्सा आया हुआ था। मैंने तलवार से उसका गला काट दिया और घर के पीछे जो नदी है, उसमें फेंक दिया। इस घटना का किसी को पता नहीं लगा। यह सुनकर जज बोला- 'तुम्हारे को इस समय फाँसी होगी ही; मैंने भी सोचा कि मैंने किसी से घूस (रिश्वत) नहीं खायी, कभी बेईमानी नहीं की, फिर मेरे हाथ से इसके लिये फाँसी का हुक्म लिखा कैसे गया? अब सन्तोष हुआ। उसी पाप का फल तुम्हें यह भोगना पड़ेगा। सिपाही को अलग फाँसी होगी?

(उस सज्जन ने चोर सिपाही को पकड़वाकर अपने कर्तव्य का पालन किया था। फिर उसको जो

दण्ड मिला है, वह उसके कर्तव्य -पालन का फल नहीं है, प्रत्युत उसने बहुत पहले जो हत्या की थी, उस हत्या का फल है। कारण कि मनुष्य को अपनी रक्षा करने का अधिकार है, मारने का अधिकार नहीं। मारने का अधिकार रक्षक क्षत्रिय का, राजा का है। अतः कर्तव्य का पालन करने के कारण उस पाप(हत्या) का फल उसको यहीं मिल गया और परलोक के भयंकर दण्ड से उसका छुटकारा हो गया। कारण कि इस लोक में जो दण्ड भोग लिया जाता है, उसका थोड़े में ही छुटकारा हो जाता है, थोड़े में ही शुद्धि हो जाती है, नहीं तो परलोक में बड़ा भयंकर (ब्याजसहित) दण्ड भोगना पड़ता है।)

इस कहानी से यह पता चलता है कि मनुष्य के कब किये हुए पाप का फल कब मिलेगा इसका कुछ पता नहीं। भगवान् का विधान विचित्र है। जब तक पुराने पुण्य प्रबल रहते हैं तब तक उग्र पाप का फल भी तत्काल नहीं मिलता। जब पूर्वपुण्य समाप्त होते हैं, तब उस पाप की बारी आती है। पाप का फल (दण्ड) तो भोगना ही पड़ता है, चाहे इस जन्म में भोगना पड़े या जन्मान्तर में।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि॥

□□□

सद्गुरु चरण सहारे हैं

□ डॉ० प्रो० रामदेव प्रसाद सिंह 'देव' (पूर्व कुलपति)

केहू तो मगन परिजन सुतदार संग
केहू दिनरात घन धाम को सँवारे हैं।
केहू मान सम्मान सुजस लोभपाश वश
लोक ईशना समक्ष निज हियहारे हैं।

केहू जोग जप तप नियम व्रत करि
सुरलोक सुख हेतु सर्वस वारे हैं।
किंतु दीन देव प्रज्ञाकिंकर अकिंचन को
एकमात्र सद्गुरु चरण सहारे हैं।

गतांक से आगे

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च' (यजुः १६/२९) इस मंत्र को शिखाछेदन में उदाहृत करना भी युक्त नहीं हो सकता। क्योंकि-यहाँ पर शिखाहीनता नहीं कही गई; सामान्य केश वहाँ पर इष्ट हैं। 'केशा न शीर्षन् यशसे, श्रियै शिखा' (यजुः १९/९२) इस मन्त्र में शिखा तथा केश भिन्न-भिन्न शब्द आये हैं। तब केशों से 'शिखा' का ग्रहण नहीं हो सकता। इधर 'श्रियै शिखा' इस मन्त्र से विरोध भी पड़ेगा। शिखा भी प्राप्ति के लिए कही गई है, फिर उसे क्यों काटा जाय? अथवा रुद्राध्याय के इस मन्त्र में रुद्र के दो आश्रम बताये गये हैं। कपर्दी-जटाजूटधारी को कहते हैं; सो यह शब्द वानप्रस्थावस्था का द्योतक है; क्योंकि-वानप्रस्थी को ऐसे ही जटिल रहना पड़ता है और 'व्युप्तकेश' से संन्यासाश्रम इष्ट है; वैसे कि-महीधराचार्य ने भी अपने भाष्य में संकेत दिया है- 'यत्यादिरूपेण मुण्डितत्वम्।'

(१४) संन्यासियों के लिए शिखा का त्याग तो अपवाद है प्रतिपक्षियों से प्रोक्त कारण नहीं। इस कारण उनके लिए 'ताण्ड्यमहाब्राह्मण' में कहा है- 'शिखा अनुप्रवपन्ते, पाप्मानमेव तदपघ्नते। लघीयांसः स्वर्गलोकमयामेति' (४/१०/२५)। स्वा० दयानन्द जी ने भी प्राजापत्येष्टि (जिसमें यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर इस प्रकार मनु० (६/३८) के प्रमाण से (संस्कार-विधि २६२ पृष्ठ) 'सर्ववेदसम-गृहाश्रमस्थ पदार्थ मोह, यज्ञोपवीत और शिखा आदि को धारण करता है, उनको छोड़, यह अथर्ववेद के प्रमाण से (संस्कार विधि पृ० २७२) 'सर्ववेदसम शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रम-चिह्नों का त्याग करना है यह सबसे बड़ा यज्ञ है' इस

तैत्तिरीयके प्रमाण से संस्कारविधि पृ० २७९ में संन्यासियों के लिए शिखा-त्याग स्वीकार किया है।

७५ वर्ष के बाद सामान्यतया संन्यास का विधान है; तब आयु की वृद्धि की जाने से शरीर की पूर्णता हो जाने के कारण 'अधिप' मर्मस्थल की त्वचा कठोर हो जाती है, और शिखाजन्य लाभ भी ७५ वर्ष तक प्राप्त होकर सारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं; तब उस समय शिखा-त्याग में भी कोई हानि नहीं होती। इसके अतिरिक्त तथा कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड के समाप्त हो जाने से तत्सम्बद्ध शिखा-सूत्र का त्याग ठीक भी है। 'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत् कृतम्' (१/४) यह 'कात्यायनस्मृति' का वचन कर्मउपासनाकाण्डपरक है, ज्ञानकाण्डपरक नहीं। जो लोग शिखाजन्य सब लाभों को प्राप्त करके सिद्धि को प्राप्त हो चुके हों; जिसकी सब वासनाएँ नष्ट हो चुकी हों; संन्यास के अधिकारी भी वही हैं; शिखा-त्याग में भी उन्हीं का अधिकार है, क्योंकि अब उनका किसी भी कर्मफल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। शिखा रखी जाती है कर्मकरणार्थ और प्राणों के रक्षणार्थ। वे ही ज्ञानशाली योग प्राप्त कर कर्मों को छोड़कर अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर उन प्राणों के निकलने में अन्तरायस्वरूप शिखा को हटाकर उस रिक्त स्थान के द्वारा उन प्राणों को निकाल देते हैं; जिससे उनकी ऊर्ध्वगति होती है। उक्त वेद मन्त्र में, तथा संन्यास-विधान में गर्म ऋतु वा देश के कारण शिखात्याग नहीं कहा गया। इससे प्रतिपक्षियों का पक्ष कभी भी सिद्ध नहीं होता।

शिखा रखने में अन्य उपपत्ति

(१५) तीन आश्रमों तक शिखा रखने फिर संन्यास में उसका त्याग करने में यद्यपि पहले

उपपत्तियाँ दी जा चुकी हैं, तथापि अन्य उपपत्तियाँ भी दी जाती हैं। पाठक सावधानी से देखें।

सारी सृष्टि का मूल अग्नि ही है। अग्नि का स्वरूप उसकी शिखा से ही व्यक्त होता है। अग्नि को संस्कृत में 'शिखी' कहा जाता है। अग्नि जब शिखारहित हो तो उसमें हवन निषिद्ध माना गया है। जब अग्नि 'शिखी' हो; तो किसी की शक्ति नहीं कि-उसका स्पर्श कर सके। उसके उस स्वरूप (शिखित्व) के नष्ट होने पर भस्म भी उसे आच्छन्न कर दिया करती है। आज हम भी जो पददलित हो रहे हैं, उसमें भी कारण यह है कि हमने अपना अग्नि से प्राप्त स्वरूप शिखित्व हटा दिया है। हम सब अग्नि से उत्पन्न हैं, अग्नि के उपासक हैं। अग्नि से ही हम 'तनुं मे पाहि, आयुर्मे देहि, वर्चा मे देहि, अग्ने! यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आवृण' (पारस्क० २/४/०७) 'मयि मेधां, मयि प्रजां, मयि अग्निस्तेजो दधातु' (आश्व० गृ० १/२१/४) 'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तथा मामद्य मेधयाग्ने! मेधाविनं कुरु स्वाहा' (यजुर्वेद वाज० सं० ३२/१४) इत्यादि प्रार्थना करते हैं।

हमारे गोत्र-पुरुष भी हमारा अग्नि के साथ प्राचीन सम्बन्ध बताते हैं। जमदग्निगोत्र 'जमद् (ज्वलद्) अग्नि' (निरुक्त ७/२४/८) को बताता है, अङ्गिरस् गोत्र अग्नि के अंगार (निरु० ३/१७/१) को बताता है। इस प्रकार भृगु, अत्रि, भारद्वाज आदि की भी वही अग्निमूलक उत्पत्ति की निरुक्ति कही गई है। ब्राह्मणों में तो अग्नि का विशिष्ट निवास माना गया है, जैसे कि- 'वैश्वानरः प्रविशति अतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्' (कठोपनि० १/१/७) 'ब्राह्मणो ह वा इममग्निं वैश्वानरं बभार (गोपथब्रा० १/२/२०), 'अग्निः यो ब्राह्मणान् आविवेश' (अथर्व १९/५९/२)। तभी निषादों के खाने के समय बिनता ने गरुड़ को ब्राह्मण खाने के लिए निषेध कर दिया कि- ब्राह्मण के खाने से तेरे गले में दाह होगा। देखो 'महाभारत' आदिपर्व २९ अध्याय। अस्तु।

जो जिसकी उपासना करता है, अन्त में उसके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। उपासक भी चाहता है; तभी वह अपने उपास्य के स्वरूप की प्राप्त्यर्थ उपास्य के ही लिङ्गों को धारण करता है। जैसे- गणेशभक्त सिन्दूर आदि, शैव भस्म, रुद्राक्षादि माला को, वैष्णव लोग गोपीचन्दन तुलसीमाला आदि को धारण करते हैं। इसीलिए शुक्लयजुर्वेद के शतपथब्राह्मण में कहा है-'देवो भूत्वा देवान् एति' (१४/६/१०)।

इस प्रकार हम लोग भी अग्नि के उपासक होने से उसके लिङ्ग 'शिखा' को धारण करते हैं, और उस चिह्न को धारण करना भी चाहिये। ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि तीन आश्रमों में अग्नि की उपासना कही गई है। अनग्नि (अग्निरहित) होकर हम प्रत्यवायभाक् माने जाते हैं। संन्यास आश्रम में जब कि अग्नि का त्याग कहा है; तब अग्नि के चिह्न शिखा का भी त्याग कहा गया है। अग्निसेवन (यज्ञ) के अधिकारपट्ट (यज्ञोपवतीत-सूत्र) का भी त्याग कहा गया है। ऐसी स्थिति में पुरुष का अग्निमय संसार से भी कोई सम्बन्ध नहीं रहता। तभी तो मृत्यु के समय भी संन्यासी को अग्नि से नहीं जलाया जाता। इससे स्पष्ट है कि- हमें तीन आश्रम तक शिखा का त्याग ठीक नहीं। अग्नि के उपासक शिखा के श्रद्धालु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि जल-वायु आदि का सेवन करते हुए भी परम तेजस्वी थे! तेजस्वी होने से वर-शाप आदि देने में भी समर्थ हुए। इसीलिए ही शिखा में अधिक बल भी ब्राह्मणादिकों में था। आज वे ही शिखा की उपेक्षा से तेजोहीन हो गये हैं। शिखात्याग सर्वथा नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर यही शिखा आपको तेजस्वी बनायेगी। शिखा-त्याग का ही परिणाम देशनिर्वासन वा पाकिस्तान हुआ है।

क्रमशः.....

भगवान श्रीराम की अनुपम झाँकी

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

ऐसन स्वरूप कहाँ पवल हे,
नृप दशरथ कुमार।
कोटि-कोटि काम के लजवल हे
दुलहा सरकार।
जगत सिरमाँर सिर मौरिया हे,
सरसे सुषमा अपार।
मरकत शयल पर साजल हे,
मानो रवि रश्मिधार।
मीन हू लहि काम केतुता हे,
सेई कुन्डल उदार।
नाशा ललित सुकपोल गोल हे
पाटल सुकुमार।
खंजनहु खंजता छिसरी हे,
लखि नयन कजरार।
कुंचित कच लखि भृकुटी हे,
मद तजो धनुमार।

ध्याई भव भावन मुखाम्बुज हे,
भयो चन्दसुधासार।
अरुण हुलहि अरुणाई हे।
भजि अधर अरुणार।
काम करि सावक समान कर हे,
धनु अंजनि हार।
पियरी बियहूति धोती रे,
छलके शृंगार।
मिथिला के वासी मगन भये हे,
पाये पैरि के न पार।
नृपति विदेह से विदेह भये हे,
लखि रूप परावार।
आये जनक की दुअरिया हे,
राम अश्व असवार।
लखि रघुवर सीतावर हे,
'गिरिधर' बलिहार।

युगल सरकार की झाँकी

देखु-देखु-सखि, देखु, सिया दुलहिनिया हे।
कोटि-काम बाम केर, चित भुलहिनिया हे।।
रघुनंदन बाम दिशि, जनक नन्दनिया हे।
पूरण शशि से संग, शरद चन्दनिया हे।।
शीश चूड़ामणि लसे, माँग में सिन्दूरिया हे।
नाणिनी के संग जैसे, आशीन अँजोरिया हे।।
पल्लव अधर सोहे, मुख सोहे पनमा हे।

काम केतु सम सखि, कुन्डल सोहे कनमा हे।।
खंजन नयन लसे, मन्द - मुस्कनिया हे।
दाड़िम दसन सखि, शान्त चितवनिया हे।।
जनक सुकृत सखि, ललना मुरतिया हे।
छवि हू कि छवि सिया, हरति अरतिया हे।।
नित मन मन्दिर लसे, राम-सिया जोड़िया हे।
कवि 'गिरिधर' केरि, जीवन की मुरिया हे।।

प्रस्तुति- श्रीमती मधुजा लाल (सीतामढी)

ज्ञान और भक्ति

□ धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज

बड़े कुतूहल के साथ लोगों का प्रश्न होता है कि ज्ञान बढ़ा कि भक्ति? कुछ लोग ज्ञान की महिमा दिखलाते हुए भक्ति का अपकर्ष दिखलाते हैं, तो कुछ लोग भक्ति की महिमा के सामने ज्ञान को निकृष्ट ठहराते हैं। कोई भक्ति को ज्ञान का साधन कहते हैं, तो कोई ज्ञान को भक्ति का साधन कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी का कहना है कि ज्ञान से विश्वास और विश्वास से प्रीति होती है—

“जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई।
जिमि खगेश जल की चिकनाई॥”

भक्तिमणि प्राप्त करने के लिये भी ज्ञान-वैराग्य को साधन ही माना गया है—

“पावन पर्वत वेद पुराना।
राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित जो खोजइ प्राणी।
पाव भगति मनि सब सुखखानी॥”

भक्ति के बिना जो ज्ञान को ढूँढ़ते हैं, वे मन्दभाग्य हैं। वे मानो कामधेनु को छोड़कर दूध के लिये आक ढूँढ़ते हैं—

“जे अस भगति जानि परिहरहीं।
केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं॥
ते सठ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी॥”

श्रीमद्भागवत में भी कहा है—

“येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥”

अर्थात् हे कमलनयन! जो ज्ञान के प्रभाव से अपने को निर्मुक्त जानने वाले हैं या ज्ञानी मानते हैं, परन्तु आपके श्रीचरणरविन्द प्रेम द्वारा जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है, वे बड़ी कठिनाई से उच्चतम पद पर आरूढ़ होकर भी पुनः पतित हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने आपके श्रीचरण-कमल का आदर नहीं किया।

“जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥”

“नानुव्रजति यो मोहाद् व्रजन्तं हरिमीश्वरम्।
ज्ञानाग्नि-दग्ध-कर्माऽपि स भवेद्राक्षसाधमः॥”

अर्थात् श्रीहरि की रथयात्रा में जो मोहवश उनका अनुगमन नहीं करता, वह ज्ञानाग्निदग्धकर्मा होकर भी राक्षसाधम हो जाता है। जो ज्ञानप्रयास को छोड़कर सन्तों को भी मुखरित करने वाली श्रवणरन्ध्र में प्राप्त भगवान् की वार्ता को शरीर, वाक् तथा मन से प्रणाम करता हुआ, जीवन व्यतीत करता है, वह त्रिलोकी में अजित भगवान् को भी जीत लेता है, अर्थात् मनोवचनातीत भगवान् को अपने तनु तथा मन के वश में कर लेता है—

“ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये
प्रायशोऽजितजितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥”

“तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो॥”

भगवान् के साथ जिनका सौहार्द सुदृढ़ है, ऐसे भगवान् के भक्त कभी भी मार्ग से नहीं गिरते, अपितु वे भगवान् द्वारा सुरक्षित हो विघ्नसेनानियों के सिर पर पादविन्यास करते हुए निर्भय विचरते हैं।

“या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्
भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्
किन्त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्॥”

भक्तों को भगवान् के श्रीचरणारविन्द के ध्यान में रस मिलता है किंवा भगवद्भक्तों के चरित्र-श्रवण से जो रस व्यक्त होता है, वह स्वप्रकाश, स्वमहिमास्थित भगवान् में भी नहीं व्यक्त होता। फिर अन्तक की तलवार से विलुलित विमानों से गिरने वाले लोगों के सुखों की तो चर्चा ही क्या है?

इसके सिवाय यह भी है कि ज्ञान हो जाने पर भी भक्ति के बिना उसकी शोभा नहीं होती।

“नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्मयदप्यकारणम्॥”

ज्ञान, वैराग्य, धर्म और कर्म यह सभी प्रेम-लक्षणा भक्ति से ही सुशोभित होते हैं। उसके बिना सब निरर्थक हो जाते हैं।

“योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू।

जहाँ न राम प्रेम परधानू॥

सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ।

जहँ न राम पदपङ्कज भाऊ॥”

साथ ही ज्ञान के उत्कर्ष का भी पक्ष प्रसिद्ध ही है। “नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते” अर्थात् ज्ञान के समान कोई भी पवित्र नहीं है। “वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सूदुर्लभः” सब कुछ वासुदेव ही हैं, ऐसा ज्ञानवान् महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञान को छोड़कर दूसरा कल्याण का मार्ग ही नहीं है। बिना ज्ञान के भक्ति होती ही नहीं-“तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥” “ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः॥” “नैनमविदितो देवो भुनक्ति॥” अर्थात् यह देव बिना ज्ञान के प्राणी का अन्तरात्मा होकर भी पालन नहीं करता, अर्थात् सर्वानर्थ से विनिर्मुक्त नहीं करता। भगवान् ज्ञानी को प्रत्यक्ष अपना आत्मा ही बतलाते हैं। “ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्॥”

समस्त भक्तों की अपेक्षा ज्ञानी भक्त की विशेषता स्वयं श्रीभगवान् स्वीकार करते हैं- “तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते॥”

गोस्वामीपाद तुलसीदास जी भी ज्ञान को ही साक्षात् मोक्षप्रद बललाते हैं-

“धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना।

ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना॥”

“भेद गए बिनु रघुपति,
अति न हरहिं भवजाला॥”

“सकल दृश्य निज उदर मेलि,
सोवड़ निद्रा तजि योगी।

सो हरिपद अनुभवड़ परम सुख,
अतिशय द्वैत वियोगी॥”

साथ ही जब द्वैत अज्ञान का कार्य है, तब उसकी निवृत्ति के लिये ज्ञान की अपेक्षा है ही- “क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान॥” साथ ही भक्ति का ज्ञान साधनों में वर्णन स्पष्ट है-

“मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥”

“मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥”

“यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥”

“श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि॥”

इत्यादि श्रुतियों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि भक्ति से ही ब्रह्मात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है।

इन दोनों पक्षों पर विचार करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि भक्तिपद का प्रयोग कहाँ होता है। वैदिकों की दृष्टि में कर्म, उपासना और ज्ञान यह तीन साधन प्राणियों के कल्याण के मूल हैं। कर्म से मल की निवृत्ति, उपासना से विक्षेप की निवृत्ति, और ज्ञान से आवरण की निवृत्ति होती है। मल, विक्षेप, आवरण इन तीनों उपद्रवों से उपद्रुत होकर अन्तरात्मा अनन्त अनर्थों का भागी होता है।

□□□

सावन में कजरी के महोच्छव

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

सावन में कजरी के महोच्छव
मैथिली मेघ मल्हार में गावें।
झूले कदम्ब की डार पै झूलन
हेरि सबै गुड़ियान झुलावैं॥
शीतल मन्द सुगन्ध बयारि
फुहारि परै मन मोद बढ़ावैं।
'गिरिधर' के प्रभु के उपमान ज्यों
मेघ बिलोकि सिया सुख पावैं॥

कुमुदिनी टीका- सावन में कजरी के महोत्सव के समय सीताजी मेघ मल्हार राग में श्रावणी गाती हैं। स्वयं कदम्ब की डाल पर झूला झूलती हैं और क्रम से अपनी गुड़ियों को भी झुलाती हैं। इसी प्रकार शीतल मन्द-सुगन्ध वायु एवं फुहारों का आनन्द लेती हुई सभी को प्रसन्न करती हैं और गिरिधर कवि के स्वामी श्रीराम के शरीर के उपमान रूप में मेघों को निहार-निहार कर सीताजी बहुत सुखी होती हैं।

बीरुध बीरन के सिर बाँधन
सावन में जरई सिय बोवें
सींचति नेह के नीर निरन्तर
गाइ के गीत सोवाई के सोवें
नेम करैं हरतालिका तीज को
प्रीति पुरातन चित्त में गोवें
'गिरिधर' स्वामि चरित्र को गावति
जागति ही सब राति बिगोवैं॥

कुमुदिनी टीका- बालरूपिणी भगवती सीताजी

श्रावण के महीने में वृक्षरूप अपने भाइयों के सिरों में बाँधने के लिये जरई अर्थात् जौ का पौधा उगाने के लिये जौ के बीज बोती हैं, उसे गमले में सदैव प्रेम के जल से सींचती हैं। सायंकाल गीत गाकर जरई को सुलाकर सोती हैं और सीताजी हरतालिका तीज अर्थात् भाद्रपद शुक्ल तृतीया को व्रत करती हैं। प्रभु की पुरातन प्रीति को अपने चित्त में छिपा के रखती हैं। गिरिधर कवि के स्वामी श्रीरामचरित्र को गाती हुई जागरण में ही सम्पूर्ण रात्रि बिता देती हैं।

विशेष- पौराणिक कथा के अनुसार भाद्रपद शुक्ल तृतीया को हरतालिका सखी द्वारा पार्वती जी ने शिवजी का अपहरण करवा लिया था इसलिये यह दिन अखंड सौभाग्य के लिये शुभ माना जाता है। इसे प्रत्येक भारतीय सौभाग्याकांक्षिणी कुमारियाँ और सौभाग्यवती नारियाँ दोनों ही करती हैं। इसमें महिलाएँ रात्रि में सोती नहीं। इसी दिन वर्ष में एक बार गीत में ही अपने पति के नाम का उच्चारण करती हैं।

आगिलि लीला में रक्षन हेतु ज्यों
राखी अशोक की डारी में बाँधैं।
शीश धरें जरई सिय सादर
टीका लगाइके भाइहिं साधैं॥
बारहिं बार निहोरि महेशहिं
नेह ते गौरिहुँ को अवराधैं।
'गिरिधर' स्वामिनि बृक्षन के हित
आशिरबाद लहैं अवगाधैं॥

कुमुदिनी टीका- अग्रिम अर्थात् प्रभु की

रणलीला में अपनी प्रतिबिम्ब स्वरूप माया की सीता के रक्षण के लिये ही मानो सीताजी अशोक वृक्ष की डार में राखी बाँधती हैं और उसके सिर पर आदरपूर्वक सीताजी जरई अर्थात् जौ का पौधा रखती हैं और अपने भाई अशोक को टीका लगाकर उसे समझा रही हैं कि जब मेरे प्रतिबिम्ब में माया की सीता वेदवती का आवेश होगा और उन्हें रावण हरण करके लंका ले जाकर तुम्हारे अर्थात् अशोक वृक्ष के नीचे निवास देगा तब तुम माया सीता जी को मेरा ही स्वरूप मानकर उनकी रक्षा और देखभाल करना। भगवती सीता बार-बार वृक्षों के लिए शंकर जी से प्रार्थना करती हैं। गौरी-गणेश की आराधना करती हैं। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी अपने वृक्ष भाइयों के लिए देवताओं से अगाध आशीर्वाद प्राप्त करती हैं।

भाई सगे सिय मान तरून को
लाकरिहूँ कबहूँ न कटावैं।
पावक होत्र में सो समिधा हित
डारि हरी तरु की न छँटावैं॥
कानन काटै न देइ किरातनि
शाखन आगिहूँ ते न हटावैं।
'गिरिधर' स्वामिनि पादप की
बहिनी बनि बीर बिपत्ति बटावैं॥

कुमुदिनी टीका- भगवती सीताजी वृक्षों को सगा भाई मानकर उनकी लकड़ी कभी नहीं कटाती। अग्निहोत्र में समिधा के लिये भी हरी डालें भी काटने की आज्ञा नहीं देतीं। आदिवासी कोलकिरातों को भी कभी भी वन काटने नहीं देतीं। अपने सामने आई हुई वृक्षों की शाखाओं को भी नहीं हटातीं।

गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी वृक्षों की बहिन बनकर अपने बीरन की विपत्ति बाँट लेती हैं।

सीय कहें जग सार के सार ये
भोर्यौं बिरीछ कबौं न कटावौ।
ये परियाबरनी सरवस्व हैं
भूतल पूत इन्हें न मिटावौ॥
ये बरषा के निदान औ प्रान हैं
स्वारथ लागि इन्हें न छँटावौ।
'गिरिधर' जो इन्हें काटन चाहत
डाँटि तिन्हें हटकौ औ हटावौ॥

कुमुदिनी टीका- बालरूपिणी भगवती सीताजी सभी प्राणियों से कहती हैं कि ये वृक्ष संसार के सारसर्वस्व भगवान श्रीराम के भी सार अर्थात् साले हैं। फलतः तुम सब मनुष्यों के मामा हैं, भूलकर भी इन वृक्षों को कभी मत कटने दो। ये वृक्ष पर्यावरणी पदार्थों के सर्वस्व हैं अर्थात् इन्हीं से पर्यावरण शुद्ध रह सकता है। ये पृथ्वी के पुत्र हैं इन्हें कभी मत नष्ट करो अर्थात् वृक्षों को कभी मत काटो, ये वृक्ष ही वर्षा के कारण और प्राण हैं, इनके कम हो जाने और न रहने से उचित वर्षा नहीं हो सकेगी, सब लोग जल के बिना मर जाओगे, अपने स्वार्थ के लिये बड़े बड़े व्यावसायिक संयंत्र भवन और महला दुमहला बनाने के लिये इन वृक्षों को मत कटाओ। गिरिधर कवि की स्वामिनी सीताजी कहती हैं कि जो स्वार्थी, राष्ट्रद्रोही तत्व अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये वृक्षों को काटना चाह रहे हैं। उन्हें डाँट धमकाकर रोको और बलपूर्वक उन्हें दूर भगा दो।

भौतिकवाद की भीम बिभीषिका
मानव मूल्यनि खाइ लई है।

शान्ति नहीं कतहूँ कबहूँ
 सुख मंगल निष्ठा हेराई गई है॥
 स्वाहा सुनी नहि हा हा दसों दिशि
 कैसी दशा यह आइ गई है।
 राखिय कानन 'गिरिधर' स्वामि
 न तौ विपदा भहराई गई है॥

कुमुदिनी टीका- भगवती सीताजी गिरिधर कवि के स्वामी भगवान श्रीराम से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे प्रभो! भौतिकवाद की भयंकर विभीषिका मानव मूल्यों को खा गई है, कहीं भी कभी भी किसी को भी न तो शान्ति है और न ही सुख और मंगल ही। सबकी निष्ठा लुप्त हो गई है। स्वाहा का अर्थ सुनाई नहीं पड़ रहा है। दसों दिशाओं में हाहाकार ही हाहाकार है। हे भगवन्! यह कैसी परिस्थिति आ गई है। हे गिरिधर कवि के आराध्य देव प्रभु राघव! अब आप ही वन्य सम्पदा की रक्षा कीजिये नहीं तो भारत पर घोर विपत्ति टूट पड़ी है।

पश्चिम सभ्यता नीच परम्परा
 के सिगरे अनुकारि भए हैं।
 मानत बेद न मातु पिता गुरु
 कौड़ी न लागि भिखारी भए हैं॥
 कानन काटि कुसौध बनाइ
 बिषाद बढ़ाई दुखारी भए हैं।
 'गिरिधर' स्वामिनि राम बिहाई के
 चाम के लोग पुजारी भए हैं॥

कुमुदिनी टीका- भगवती सीताजी कहती हैं, अरे! सभी लोग पश्चिमी सभ्यता और निकृष्ट परम्परा के अनुकरण करने वाले बन गए हैं। लोग वेद,

माता-पिता, गुरु को नहीं मानते हैं, कानी कौड़ी के लिये सभी भिखारी बन गए हैं, अब वनों को काटकर विलासितापूर्ण महलें बनाकर स्वयं कष्ट को बढ़ावा देकर लोग दुखी हो गए हैं। गिरिधर कवि की स्वामिनी मुझ सीता और प्रभु राम को छोड़कर प्रायशः लोग चमड़ी के पुजारी हो गए हैं।

छोड़ि स्वदेशी सुसात्विक वस्तुनि
 मूढ़ बिदेशी को बस्तु लये हैं।
 जोग बिहाइ के जोगा करै शठ
 रोग बियोग कुभोग हये हैं॥
 मुद्रा हरे सबके मुद मंगल
 साक्षर राक्षस आज भये हैं।
 'गिरिधर' देखहु पश्चिम जाइके
 सूरज हूँ हठि के अथये हैं॥

कुमुदिनी टीका- लोग स्वदेशी-सात्विक वस्तुओं को छोड़कर विदेशी सारहीन वस्तुएँ लेने लगे हैं, दुष्टजन योग छोड़कर योगा कर रहे हैं अर्थात् भारतीय पद्धति की योग साधना छोड़कर मनमानी कल्पित जोगा की साधना करते हैं, आज सभी लोग भोगवासना के परिणाम स्वरूप रोगों और वियोगों द्वारा नष्ट कर दिये गए हैं। मुद्रा अर्थात् पैसे की प्यास ने सबकी प्रसन्नता और मंगलों को नष्ट कर दिया है। आज साक्षर ही राक्षस बन गये हैं अर्थात् तथाकथित पढ़े लिखे लोग भी केवल अपने ही स्वार्थ साधन में लग गये हैं। गिरिधर कवि कहते हैं जरा देखो यदि पश्चिमदिशा में जाकर सूर्य नारायण भी अस्त हो जाते हैं तो तुम किस खेत की मूली हो?

(श्रीसीतारामकेलिकौमुदी से साभार)

गुरु पूजन के शुभ अवसर पर

□ श्री ललिताप्रसाद बड़थवाल

गुरुवर आप ही हो मेरे आश्रयदाता। हर लो हे ज्योतिर्मय मेरा अज्ञान तिमिर।
 आप ही रक्षक बन्धु पिता अरु माता॥ जग में आवागमन का भय न रहे फिर॥
 आप ही दानवता में मानवता लाते हो। गुरुवर पावन हैं मैं पतित महान।
 आप ही मानव को देव बनाते हो॥ इस नीच पर कृपा करो भगवान॥
 दुखियों को सुख देने वाले हो। मुझ में कुछ न रहे अभिमान।
 आप ही अधमों के उद्धारक हो॥ दे दो बुद्धियोग का ऐसा वरदान॥
 मन जब श्रीचरणों में लग जाता है। यदि गुरुदेव का अवतार न होता।
 तब जीवन अमृतमय बन जाता है॥ “ललित” जैसे पतित का भी निस्तार न होता।
 वह साधन ज्ञान सिखाते हो तुम। गुरुवर की कृपा का अन्त नहीं है।
 आसुरि वृत्ति का क्षय हो जाता है॥ उनके सम कोई सन्त नहीं है॥
 आप ही भवसागर से तारक हो। प्रभु को पाने का सुगम सहारा है।
 सुकृति सुमति शुभ गति के कारक हो॥ गुरुमंत्र ही एकमात्र आधार हमारा है॥

□□□

सच्ची भक्ति

प्रस्तुति- श्रीशिवकुमार गोयल

धर्मशास्त्रों के प्रकांड विद्वान संत अनमीषि को शास्त्रीय ज्ञान के कारण ‘अक्षर महर्षि’ कहा जाता था। वह आश्रम में छात्रों को ज्ञान-दान करने में लगे रहते थे।

एक संत उनके आश्रम में आए। उन्होंने महर्षि से कहा, ‘आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। शास्त्रानुसार क्या दान देते हैं?’ उन्होंने कहा, ‘मैं छात्रों को निःशुल्क पढ़ाता हूँ। यह भी तो ज्ञान-दान ही है।’ संत जी ने शास्त्र का प्रमाण देकर कहा, ‘सद्गृहस्थ संत को अन्नदान भी जरूर करना चाहिए। भूखों व जरूरतमंदों को अन्नदान करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है।’ महर्षि ने संकल्प किया, ‘आज से अन्नदान करके ही भोजन किया करूँगा।’ उन्होंने प्रतिदिन दरिद्र को भोजन कराना शुरू कर दिया।

एक दिन आश्रम में कोई भी भोजन मांगने नहीं आया। उन्हें लगा कि आज उनका संकल्प पूरा नहीं होगा। ऋषि दंपती भूखे की खोज में आश्रम से निकल गए। उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध कुष्ठ रोगी को कराहते हुए देखा। उन्होंने उससे विनयपूर्वक कहा, ‘तुम भूखे हो, आश्रम में चलकर भोजन करो।’ वृद्ध ने कहा, ‘मैं चांडाल हूँ। मैं आश्रम में कैसे जाऊँगा?’

ऋषि का हृदय उसके शब्द सुनकर करुणा से भर गया। उन्होंने कहा, ‘चांडाल और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं होता, हम एक ही परमात्मा के अंश हैं।’ वृद्ध उनके साथ आश्रम में आ गया। ऋषि दम्पती ने भोजन कराया व उसका उपचार किया।

ऋषि को सोते समय अनुभूति हुई कि भगवान कह रहे हैं, यही सेवा मेरी सच्ची भक्ति है।

मनुष्य जीवन की अनमोल संपदा है समय

□ प्रस्तुति-श्री वासुदेव अग्रवाल (हैदराबाद)

हम जी रहे हैं-यह धारणा सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि हम मर रहे हैं। जितने वर्ष चले गये, उतने हम मर गये। हम निरन्तर मर रहे हैं, जीवन से दूर जा रहे हैं, पर वहम होता है कि हम जी रहे हैं।

यह संसार 'मृत्यु संसार सागर' है। इसमें हर चीज मर रही है। इसलिये सावधान हो जाओ। सिवाय भगवान के कोई आपकी रक्षा करने वाला नहीं है। जो सम्पूर्ण दोषों का खजाना है, वह कलियुग बड़ी तेजी से आ रहा है। अतः निरन्तर नामजप करते रहें। यह नामरूपी धन आप निरन्तर संग्रह करते रहें। जीवन का कोई भरोसा नहीं है। मरना निश्चित है। सब चीजें महंगी हो रही हैं। भगवान का भजन भी महंगा हो रहा है! मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं है, इसलिये हर समय भजन करते रहो- 'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर' (गीता ८१७)। हर समय भजन करना बीमा है। बीमा कराकर निश्चिन्त हो जाओ। भगवान शंकर के लिये कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं है, फिर भी वे मांगते हैं-

बार-बार बर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग।

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।

(मानस, उत्तर० १४ क)

जैसे वियोग नित्य है, ऐसे ही अक्रियता भी नित्य है। प्रत्येक साधक के अंत में अक्रिय अवस्था आती है।

भगवान के चरणों में स्थित होकर कुछ भी चिंतन न करें, निर्विकल्प हो जायें तो ठेठ भगवान के चरणों में पहुंच गये, कुछ करना शेष नहीं रहा! भगवान के चरण कहाँ नहीं हैं? सब जगह भगवान के चरण हैं- 'सर्वतः पाणिपादम्' (गीता १३/१३)। स्याही में कौन सी लिपि नहीं है? सोने में कौन-सा गहना नहीं है? पत्थर में कौन-सी मूर्ति नहीं है? जहां निश्चय करो, वहीं भगवान प्रकट हो जाते हैं। प्रह्लाद जी के

लिये वे खम्भे से प्रकट हो गये! परमात्मा अहंकार से दूर हैं। उनके शरण हो जायें। जहाँ शरण हुए, वही भगवान हैं।

नेत्रों (इन्द्रियों) की दृष्टि सीमित है, उनसे बुद्धि की दृष्टि तेज है और उससे भी विवेकदृष्टि तेज है। विवेकदृष्टि से मनुष्य बहुत दूर तक देख सकता है।

कानों से लौकिक तथा पारमार्थिक सभी विषयों का ज्ञान हो सकता है। इसलिये 'श्रवण' की मुख्यता है। शास्त्रों और संतों से सुनकर ही हम मानते हैं कि 'परमात्मा' हैं। परंतु शास्त्रों और संतों में श्रद्धा होगी, तभी मानेंगे। परमात्मा मानने का विषय है। आजकल जिनसे पतन, बन्धन हो, उनको तो मानते हैं, पर जिनसे कल्याण हो, उनको नहीं मानते, उनसे परहेज करते हैं!

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं के भाव और अभाव का अनुभव सबको होता है, पर अपने अभाव का अनुभव कभी किसी को नहीं होता यह आध्यात्मिक विषय है। अपना होनापर निरन्तर मौजूद है। इस आध्यात्मिक विषय को ठीक जान जायें तो दुःख, अभाव सब मिट जाते हैं। इस विषय को हम कानों से सुनकर जान सकते हैं। जो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है, उस आत्मा को कानों से सुनकर जान सकते हैं। इसलिये सत्सङ्ग सुनने की बड़ी महिमा है। आत्मा जिसका अंश है, वह परमात्मा है।

अब परमात्मज्ञान कहते हैं। कोई ईश्वर को मानता है, कोई नहीं मानता। अगर मूल में ईश्वर नहीं है तो ईश्वर मानने वाले झूठे हुए, पर उनका नुकसान क्या हुआ? अगर ईश्वर है ईश्वर को न मानने वाला रीता रह जायगा! अतः ईश्वर को मानने वाले के हृदय में हलचल नहीं रहती।

अपने लिये करने से मनुष्य कभी कृतकृत्य नहीं होता। निष्काम भाव से दूसरों के हित के लिये सब कर्म करने से वह कृतकृत्य हो जाता है। अपने आपको जानने से वह ज्ञात-ज्ञातव्य हो जाता है। परमात्मा मिलने से भी प्राप्त-प्राप्तव्यता बाकी रहती है, क्योंकि प्रेम बाकी रहा! ज्ञान होने से तो अज्ञान निवृत्त होता है, नया कुछ नहीं मिलता, पर प्रेम में नयी चीज मिलती है। वह प्रेम निरन्तर बढ़ता रहता है, उसका कभी अन्त नहीं आता। इस प्रेम के भूखे भगवान भी हैं और भक्त भी।

ज्ञान में तो दुःख, संताप आदि मिट गये, पर मिला क्या? परंतु भक्ति में प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम मिलता है। प्रेम में 'और मिले, और मिलें'-यह भूख निरन्तर बढ़ती ही रहती है। प्रेम में एक रस होता है, जिसकी कभी पूर्ति नहीं होती। जैसे, सत्सङ्ग करते-करते तृप्ति नहीं होती। अर्जुन कहते हैं कि आपके अमृतमय बचन सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं हो रही है- 'भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्' (गीता १०/१८)। परीक्षित भी कहते हैं कि सुनने से तृप्ति नहीं होती, भूख-प्यास भूल गया! तक्षक के काटने की बात की तरफ भी ख्याल नहीं है! महाराज पृथु भी सुनने के लिये हजार कान मांगते हैं। इसका नाम प्रेम है। न पेट भरता है, न वस्तु समाप्त होती है। राम-राम करना इतना प्रिय लगता है कि छूटता ही नहीं। प्रेम के विलक्षण रस का कोई पारावार नहीं है। रस, रुचि बढ़ती ही रहती है।

मनुष्य के पास एक बहुत विलक्षण धन है, जो सबको बराबर मिला हुआ है। यह धन है-मानवजीवन का समय। यह धन भगवान की अहैतुकी कृपा से मिला है, अपने पुरुषार्थ से नहीं। इस धन से हम बहुत चीजों का, विद्याओं का, कलाओं का सम्पादन कर सकते हैं। समय से सब कुछ खरीदा जा सकता है। समय खर्च करके मनुष्य बुद्धिमान, बलवान बन सकता है। देवलोकों में, ब्रह्मलोक में जा सकता है। तत्त्वज्ञान, भक्ति प्राप्त कर सकता है। बात समय के सदुपयोग-दुरुपयोग की है। नरकों की प्राप्ति के लिये

भी समय खर्च करना पड़ता है- 'नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी'। बीमारी के सदुपयोग से भी परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं। बीमारी भगवान की दी हुई शुद्ध तपस्या है। उसमें एक आनन्द आता है। ऐसे तप से बुद्धि भी विकसित होती है।

प्रत्येक परिस्थिति में हमारी दृष्टि भगवान पर रहनी चाहिये। विपरीत-से-विपरीत परिस्थिति में भी भगवान की कृपा रहती है। जो प्रतिकूल परिस्थिति में रोते हैं, वे बालक हैं, बेसमझ हैं। मां बालक को नहलाती है तो वह रोता है, परंतु बालक के रोने की परवाह न करके मां उसको नहलाकर नये कपड़े पहनाकर गोदी में ले लेती है। गोदी में लेने पर मां और बालक दोनों को आनन्द होता है। कोई कष्ट आये तो युधिष्ठिर को, द्रौपदी को याद करो। भगवान राम, राजा नल को याद करो। उन पर भी कितना कष्ट आया, पर वे अपने धर्म से विचलित नहीं हुए।

यह संसार पहले भी नहीं था, पीछे भी नहीं रहेगा। सब शहर पहले भी जंगल थे, पीछे भी जंगल हो जाएंगे। उत्पत्ति-विनाश का प्रवाह बह रहा है। 'है' की सत्ता से ही यह 'नहीं' भी 'है' की तरह दीखता है। है तो परमात्मा, पर दीखता है संसार। जैसे, रज्जु सर्प की तरह और अभ्रक चाँदी की तरह दीखता है।

भगवान् को याद करना और सेवा करना इन दो के बिना मनुष्य नहीं है, पशु है।

मनुष्य शरीर को अधम भी बताया है और उत्तम भी- 'पंच रचित अति अधम सरीरा' (मानस, कि. ११/६) 'नर तन सम नहिं कवनिउ देही' (मानस, उत्तर. १२१/९)। मनुष्य शरीर की विशेषता विवेक को लेकर है। विवेक के सदुपयोग की महिमा है। विवेक का सदुपयोग है-अपने जाने हुए असत् का त्याग करना। असत् को जानते हैं, पर उसका त्याग नहीं करते-यह बड़ा भारी अपराध है, गलती है। त्याग का अर्थ है-असत् के आश्रय भरोसा, विश्वास का त्याग। हमारा लक्ष्य असत् नहीं होना चाहिये। असत् का त्याग होने पर ज्ञान, भक्ति आदि सबकी सिद्धि स्वतः हो जायेगी।

तीन महत्त्वपूर्ण बातें

□ संकलनकर्ता- श्रीशरद जी श्रीवास्तव (दिल्ली)

तीन बातों से सदा बचो- १-अपनी प्रशंसा, २-दूसरों की निन्दा और ३-परदोषदर्शन।

तीन बातें ध्यान रखकर करो- १-ईश्वर का स्मरण, २-दूसरों का सम्मान और ३-अपने दोषों को देखना।

तीन बातें सदा सोचो- १-भगवान् का प्रेम कैसे प्राप्त हो? २-दुःखियों का दुःख कैसे दूर हो? ३-हृदय पापशून्य कैसे हो?

तीन बातों पर सदा अमल करो- १-सत्य, २-अहिंसा और ३-भगवान् का नामजप।

तीन बातों से सदा अलग रहो- १-परचर्चा से, २-वादविवाद से और ३-नेतागिरी से।

तीनों पर सदा दया करो- १-अबला पर, २-पागल पर और ३-राह भूले हुए पर।

तीनों पर दया न करो- १-अपने पाप पर, २-आलस्य पर और ३-उच्छृंखलता पर

तीनों को सदा वश में रखो- १-मन, २-उपस्थ इन्द्रिय और ३-जीभ।

तीनों के सदा वश में रहो- १-भगवान् के, २-धर्म के और ३-शुद्ध कुलाचार के।

तीनों से सदा मुक्त रहो- १-अहंकार से, २-ममता से और ३-आसक्ति से।

तीन से सदा सच्चे रहो- १-धन से, २-काछ से और ३-जबान से।

तीन पर ममता करो- १-ईश्वर पर, २-सदाचार पर और ३-गरीबों पर।

तीन से सदा डरते रहो- १-अभिमान से, २-दम्भ से और ३-लोभ से।

तीन के सामने सदा नम्र रहो- १-गुरु, २-माता और ३-पिता।

तीन से सदा प्रेम करो- १-ईश्वर, २-धर्म और ३- देश

तीन को सदा हृदय में रखो- १-दया, २-क्षमा और ३-विनय।

तीन का सदा सेवन करो- १-सन्त, २-सत्-शास्त्र और ३- पवित्र भूमि।

तीन को हृदय से निकाल दो- १-राग, २-द्वेष और ३-मत्सर।

तीन व्रतों का पालन करो- १-परस्त्री सेवन का त्याग, २-परधन का त्याग और ३-असहायों की सेवा।

तीन उपवास करो- १-एकादशी, २-पूर्णिमा और ३-अमावस्या।

तीन बातों में शंका न करो- १-शास्त्रवचन, २-गुरुवचन और ३-शुद्ध मन की प्रेरणा।

तीन का भरण-पोषण करो- १-माता-पिता, २-स्त्री-बच्चे और ३-दीन-दुःखी।

तीन का संग छोड़ दो- १-व्यभिचारी का, २-जुआरी का और ३-लबारी का।

तीन प्रकार के लोगों से दूर रहो- १-नास्तिक से, २-माता-पिता-गुरु का द्रोह करने वाले से और ३-सन्त पुरुषों की निन्दा करने वाले से।

तीन की दशा पर विशेष ध्यान रखो- १-विधवा स्त्री, २-अनाथ बालक और ३-दबे हुए और पराश्रित प्राणी।

तीन की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दो- १-मूकप्राणी, २-संसारत्यागी संन्यासी और ३-कुछ भी न माँगने वाले अतिथि।

तीन की परवाह न करो- १-धर्मपालन के लिये कष्ट की, २-दूसरे का दुःख दूर करने के लिये धन की और ३-रोगी की सेवा में अपने शरीर की।

तीन आदमियों को मत रोको- १-जल्दी छूटने वाली रेल में चढ़ने वाले मुसाफिर को, २-दूसरों की सेवा करने वाले को और ३-दाता को।

तीन कामों में खूब जल्दी करो- १-भजन में, २-दान में और ३-शास्त्र के अभ्यास में।

तीन कामों को ढील में छोड़ दो- १-मुकदमेबाजी को, २-विवाद को और ३-किसी के दोषनिर्णय को।

तीन आवेशों के समय कोई भी क्रिया करने से रुक जाओ- १-क्रोध के समय, २-कामवासना के समय और ३-लोभ के समय।

तीनों का सम्मान करो- १-वृद्ध का २-ब्राह्मण का और ३-निर्धन का।

तीनों का सदा हृदय से आदर करो- १-भगवान् के विग्रह का, २-सन्त महात्मा का और ३-सत्-शास्त्र का।

तीनों के सामने नम्र रहो- १-गुरुजन, २-विद्वान् और ३-राजपुरुष।

तीन कामों के खूब मन लगाकर करो- १-भजन, २-भगवान् का ध्यान और ३-सत्संग।

तीन आँसुओं को पवित्र मानो- १-प्रेम के, २-करुणा के और ३-सहानुभूति के।

तीन आँसू अपवित्र मानो- १-शोक के, २-क्रोध के और ३-दम्भ के।

तीन बनने से बचो- १-महन्त, २-दीक्षा देने वाले गुरु और ३-मालिक।

तीन बनने में सुख मानो- १-अज्ञात सेवक, २-व्यर्थ निन्दा का पात्र और ३-परमसुख के साधन।

तीन बातों का दुराग्रह न करो- १-सम्प्रदाय, २-वेष का और ३-अपने मत का।

तीन बातों का सदा सत् आग्रह रखो- १-सत्य का, २-धर्म का और ३-सच्चरित्रा का।

तीन कामों से कम सम्पर्क रखो- १-सभा-समिति, २-अखबरनवीसी और ३-दलबन्दी।

तीन न बनाओ- १-शिष्य, २-जमात और ३-मठ।

तीन बनाओ- १-धर्मशाला, २-कुआँ और ३-देवमन्दिर।

तीन चीजें लगाओ- १-वृक्ष, २-प्याऊ और ३-अन्नक्षेत्र।

तीनों से घृणा न करो- १-रोगी से, २-निर्धन से और ३-नीची जातिवाले से।

तीन से घृणा करो- १-पाप से, २-अभिमान से और ३-मन की मलिनता से।

तीन जगह न जाओ- १-वेश्यालय, २-जुआखाना और ३-कलाल के घर।

तीन जगह रोज जाओ- १-देवमन्दिर, २-सन्त की कुटिया और ३-आजीविका के स्थान।

तीन से मजाक न करो- १-अंगहीन से, २-विधवा या अनाथ से और ३-दीन-दुःखी प्राणी से।

तीन को प्रतिदिन प्रणाम करो- १-ईश्वर, २-माता-पिता, पति और गुरुजन और ३-सन्त-महात्मा।

तीन बातों को मन की उन्नति के लिये रोज नियम से करो- १-स्वाध्याय, २-ध्यान और ३-अपने मानसिक दोषों का स्मरण।

तीन बातें स्वास्थ्य के लिये रोज नियम से करो- १-शुद्ध वायु में घूमना, २-नियमित आहार-विहार और ३-कुपथ्य का त्याग।

तीन चीजों से ज्ञान मिलता है- १-श्रद्धा, २-तत्परता और ३-इन्द्रियसंयम।

तीन नरक के दरवाजों में कभी मत घुसो- १-काम, २-क्रोध और ३-लोभ।

तीन आवश्यक साधन करो- १-समता, २-संयम और ३-सब प्राणियों के हित की चेष्टा।

तीन को गुरु न बनाओ- १-स्त्री को, २-धन को और ३-नास्तिक को।

तीन का चिन्तन नित्य करो- १-भगवान् का, २-सन्तवाणी का और ३-वैराग्य का।

□□□

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे श्रीधर ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100.00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300.00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

इस आयोजन के विशेष आकर्षण तथा विषय

- इस कथा के पूज्यव्यास पूज्यपाद जगद्गुरु जी भी स्वयं यजमान हैं। वे भी एक पोथी का पूजन अर्चन करेंगे।
- 5,100.00 की सहयोग राशि अर्पित करने वाले यजमानों के लिए ज्ञातव्य है कि इसी धन-राशि में आप दो व्यक्तियों की आवास व्यवस्था, भोजन व्यवस्था तथा पण्डितों को दी जाने वाली दक्षिणा भी सम्मिलित है। आपको तो केवल कथा श्रवण के लिए पधारना है।
- अपने तथा पारिवारिक सदस्यों के पहुँचने की सूचना एक माह पूर्व समिति को अवश्य दें कि आप कितने व्यक्ति, कितने समय तक के लिए किस दिन से किस दिन तक रहेंगे। यदि कोई यजमान अपने साथ पुत्र/पुत्री अथवा किसी अन्य को रखना चाहते हैं तो उसके लिए आपको प्रति व्यक्ति 2100.00 समिति को अतिरिक्त जमा करने होंगे।
- कीमती सामान न लाकर उपयोगी अनिवार्य सामान ही अपने साथ लाएँ।
- नैमिषारण्य क्षेत्र में आने का मार्ग इस प्रकार है-
- लखनऊ से 100 कि०मी० दूर सीतापुर जिले में नैमिषारण्य तीर्थ स्थित है।
- लखनऊ से नैमिषारण्य को प्रातः 7 बजे से सायं 4 बजे तक केसर बाग डिपो की सीधी बस सेवा उपलब्ध है।
- कानपुर से बालामऊ पैसेन्जर ट्रेन द्वारा प्रातः 5 बजे सीधे नैमिषारण्य पहुँचा जा सकता है।
- दिल्ली से मुरादाबाद होकर लखनऊ जाने वाली ट्रेन से हरदोही उतरकर 38 कि०मी० दूर पर नैमिषारण्य है। यहाँ से बस सुविधा उपलब्ध है। अथवा सत्याग्रह एक्सप्रेस (रक्सौल) पुरानी दिल्ली से सायं 5 बजे चलकर अगले दिन प्रातः 4 बजे सीतापुर कैण्ट उतरकर बस से नैमिषारण्य पहुँचे।
- हरदोही एवं सीतापुर कैण्ट से प्रति घण्टे प्रातः से सायं तक नैमिषारण्य के लिए बस सेवा उपलब्ध है।

निवेदक- पं० अमरनाथ शास्त्री

आयोजक- हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम, (बस स्टैण्ड के पास) नैमिषारण्य, जि० सीतापुर (उ०प्र०)

फोन नं०- 05865-251272, मो०- 09918331369, 09936377207

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति

(मिश्रिख कम नीमसार 0210112) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।

□□□

गुरुपूर्णिमा महोत्सव सोल्लास सम्पन्न

□ श्रीअशोक बत्रा (दिल्ली)

श्रीचित्रकूट धाम में अवस्थित श्रीतुलसीपीठ और उसी में प्रतिष्ठित श्रीरामचरितमानस मन्दिर का सभागार। शुभअवसर था श्रीगुरुपूर्णिमा महोत्सव का। नभोमण्डल के सूर्य में अत्यन्त उष्णता थी किन्तु पृथ्वी के ज्ञानभक्ति वैराग्य के सूर्यरूप पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज में रामभक्तों को देखकर सहिष्णुता विराजमान थी। सुदूर स्थानों से अपनी विनम्रता लेकर पधारे थे हजारों गुरुभक्त। सभी के मन में उत्कण्ठा थी अपने आचार्यचरणों को निहारने की और तत्परता थी अपने सद्गुरुदेवके पूजन करने की। इसी बीच समुपस्थित हुए परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय अर्चनीय वन्दनीय जगद्गुरु जी अपनी मन्दस्मित मुस्कान के साथ। मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, श्रीमुख पर तपोमूर्ति महर्षियों का दिव्यतेज, दायें श्रीहस्तकमल में त्रिदण्ड विराजमान, तपस्वी मनस्वी संन्यासियों का वेष और चरण खडाऊँ की ध्वनि से राष्ट्रधर्म विरोधियों को पावनपरिसर से पलायन कराने वाले पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने सभी का नमो राघवाय रूप अभिवादन स्वीकार किया और घोषणा की कि “सर्वप्रथम मैं अपने परमाराध्य आचार्य श्रीमदाद्यजगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी महाराज की श्रीचरणपादुकाओं का पूजन वन्दन करूँगा”। ऐसा ही होना था, अपने श्रीराघव परिवार के जाने माने गुरुभाई पण्डित वाचस्पति मिश्र जी ने पूजन से सम्बद्ध वैदिक मन्त्रोच्चार प्रारम्भ किये, पूज्यपाद जगद्गुरु जी ने अपने आचार्यचरणों का षोडशोपचार पूजन प्रारम्भ किया। वेदध्वनि से सम्पूर्ण मानसमन्दिर महक उठा। सभी दर्शकों की मनोभूमि अपने जगज्ज्वाल से हटकर वैदिक एवं पौराणिक युग के आनन्द में पहुँच गई। पूजनोपरान्त पूज्य आचार्य चरणों ने अत्यन्त संक्षिप्त उद्बोधन में कहा-

भारतीय वैदिक संस्कृति के प्रथम शिक्षक भगवान श्रीराम आज के ही दिन विद्या ग्रहण करने गुरुकुल आये थे। और वामन द्वादशी को ५६ दिन में पढ़कर लौट गये थे। इसी दिन सान्दीपनि जी के आश्रम में भगवान श्रीकृष्ण पढ़ने आये और ६४ दिन

में पढ़कर लौटे। भगवान वेदव्यास कालपी के किनारे सत्यवती-पाराशर को माध्यम बनाकर इसी दिन प्रकट हुए। गुरु पूजा का अर्थ प्रसाद (प्रसन्नता) है। जो भीतर कुटिलता रखकर गुरुपूजा करेंगे वे दण्ड के भागी होंगे। हम जो करें सरलभाव से करें पैसा या दक्षिणा का महत्त्व नहीं। आज्ञा पालन करें इसी से होगी भगवत्प्राप्ति। शिक्षागुरु और दीक्षागुरु की पूजा करें। बड़ों का सम्मान करें। गुरु और भगवान की आप सब पर कृपा बरसती रहे यही मेरा सबको आशीर्वाद।

इस आशीर्वादात्मक एवं निर्देशात्मक उद्बोधन के पश्चात् सर्वप्रथम पूजन करने की आज्ञा मिली तीन गुरुभाइयों को - श्रीशुक्ला जी, श्रीराजेन्द्र गोयल जी एवं श्रीनन्दकिशोर खेतान जी, तीनों ने सपत्नीक पूज्यपाद गुरुदेव का पूजन सम्पन्न किया और इस प्रकार सबके द्वारा गुरुपूजन की परम्परा का क्रम प्रारम्भ हो गया। मध्य मध्य में पूज्या बुआ जी के निर्देशानुसार कुछ सावधानियाँ रखने की प्रार्थना कर रहे थे डा० सुरेन्द्र शर्मा ‘सुशील’ और डा० ब्रजेश दीक्षित ‘मानसमृगेन्द्र’। नमो राघवाय के मधुर गीत का स्वर, जयघोषों की आवाज तथा पूज्यपाद गुरुदेव की प्रसन्नवदन झाँकी आज सभी को कृतार्थ कर रही थी। पूजन से निवृत्त होने वाले गुरुबहिन-भाइयों को प्रसाद वितरित किया जा रहा था और श्रीराममन्त्र की दीक्षा लेने वालों को पंक्तिबद्ध खड़ा किया जा रहा था, आज इन्हें दीक्षा लेकर श्रीराघव परिवार का सक्रिय सदस्य होना था। सभी में अद्भुत उत्साह अनिर्वचनीय विनम्रता भरी थी। हो भी क्यों नहीं उनके सम्मुख ऐसे सद्गुरुदेव विराजमान थे जिनके संकल्प बल से अनेक सेवा प्रकल्प चल रहे हैं, विश्व का अनूठा विकलांग विश्वविद्यालय चल रहा है और हजारों-लाखों परिवारों में भगवद्भजन में प्रवृत्ति हो रही है।

अन्त में हजारों गुरुबहिन-भाइयों तथा धर्मप्रेमी महानुभावों को भोजन प्रसाद कराया गया और सब सायंकाल होते होते अपने गन्तव्य को प्रस्थान कर गए।

□□□

मुरादाबाद में श्रीरामकथा की अमृतवर्षा होगी

आध्यात्मिक जगत के देदीप्यमान सूर्य धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से हरेकृष्ण सेवान्यास समिति, मुरादाबाद के तत्त्वावधान में ६ सितम्बर दिन रविवार से १४ सितम्बर २००९ सोमवार तक श्रीरामकथा की अमृतवर्षा होगी। नवदिवसीय इस रामकथा का समय होगा- सायं ६ बजे से रात्रि १० बजे तक। स्थान- कम्पनी बाग, मुरादाबाद (उ०प्र०)।

इस कथा की विशाल भव्यकलश शोभायात्रा ६ सितम्बर रविवार को दोपहर २ बजे से विधायक निवास, बाजीगरान (मुरादाबाद) से प्रारम्भ होगी।

समिति के पदाधिकारियों एवं सभी सदस्यों का पूर्ण प्रयास है कि यह कथामन्दाकिनी जनमानस का अवश्य कल्याण करेगी।

विशेष-

- इस कथा कार्यक्रम का संस्कार टी०वी० चैनल पर सीधा प्रसारण होगा।
- रात्रि में प्रतिदिन १० बजे से भोजन भण्डारा भी चलेगा।

सम्पर्कसूत्र

कार्यालय- ए १५९ आशियाना, मुरादाबाद (उ०प्र०)
मो०- ०९८३७०९५६००, ०९४१२२४५५८८,
०९४१२२४५९२०, ०९९२७८००७५९

क्या हो मेरे तुम बाबा

□ श्रीमती बिन्दु भारद्वाज

क्या हो मेरे तुम बाबा तुलसी कैसे मैं बतलाऊँगी
प्राणों के भी प्राण हो तुम चरणों में शीश नवाऊँगी
ना रचते तुम 'श्रीमानस' जो श्रीराम को कैसे जानती मैं
ना कहते जो श्रीराम कथा श्रीराम मैं ना अनुरागती मैं
दिव्य श्रीमानस रचकर तुमने प्राणों पर उपकार किया
राम प्रेम की वर्षा करके जीवन को आधार दिया
हृदय के नीरस मरुथल में अमृत बन के तुम बरसे हो
जन्मों की प्यास बुझाकर के मन ही मन में तुम हरषे हो
प्रति उपकार मैं क्या कर पाऊँ प्रति पल तुमको निहारूँगी
श्रीराम के चरणों से भी पहले तुमको मैं शीश नवाऊँगी
चन्दन तरु हैं श्री राघव जो शीतल और मंद समीर हो तुम
आनन्द के घन हैं राम यदि तृषित प्राणों के नीर हो तुम
तुमरी कृपा से ओ मेरे बाबा राघव के गुण गाऊँ मैं
पर दे दो मेरे भोले बाबा राम प्रेम पा जाऊँ मैं

पूज्यपाद जगद्गुरु जी की सिंगापुर यात्रा सम्पन्न

□ श्री सर्वेश गर्ग गाजियाबाद

विदेशों में बसे हिन्दु जनमानस को स्वकर्तव्य अथवा स्वधर्म का उपदेश करने के उद्देश्य से एवं विकलांग बहिन-भाइयों की सेवा के लिए सहयोग अर्जित करने हेतु विदेशयात्रा पर गए पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज बहुत प्रसन्न हैं अपने उद्देश्य की पूर्ति होते देखकर।

विगत १८ जून २००९ को पूज्यपाद जगद्गुरु जी के साथ पूज्या बुआ जी (डा० कुमारी गीतादेवी मिश्रा) मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा गर्ग एवं इन पंक्तियों का लेखक मैं गाजियाबाद में “चलत विमान कोलाहल होई। जय रघुवीर कहैं सब कोई॥” इस सम्पुट से श्रीसुन्दरकाण्ड का पाठ करने के पश्चात् एकादशी व्रत का पुण्य लेकर नई दिल्ली से सिंगापुर के लिए उड़ गए। पूज्यपाद गुरुदेव तो अपने जप-नियम में व्यस्त हो गए और समय-समय पर प्रसन्नमुद्रा में हमारी ओर कृपादृष्टि कर लेते थे। इधर पूज्या बुआ जी और हम दोनों पति पत्नी पूज्यपाद जगद्गुरु जी के साथ यात्रा करने के सौभाग्य को सोचकर आनन्दित हो उठते थे। हम सिंगापुर पहुँचे। अनेक धर्मानुरागी महानुभावों ने हम सबका स्वागत किया। पूज्यपाद आचार्यश्री तथा पूज्या बुआ जी से निर्धारित स्थान पर विश्राम करने की प्रार्थना की गई। हम दोनों अपने मध्यमपुत्र प्रिय नितिन गर्ग एवं पुत्रवधु सौभाग्यवती प्राची के आवास पर चले गए। सायंकाल कथा का प्रारम्भ हुआ। आयोजकों में उत्साह था भागवत कथा श्रवण का और पूज्यपाद गुरुदेव में आतुरता थी भागवत कथा श्रवण कराने की। विशाल एवं मञ्च पर बने आसन पर आसीन थे विश्वविलक्षण विभूतिपाद गुरुदेव और रंग में दिखाई दे रहे थे अनेक गण्यमान्य

महानुभाव के साथ धर्मप्रेमी महानुभाव। पूज्यगुरुदेव ने कथा के मध्य में कभी अवधी गीत, कभी मैथिलीगीत, कभी भोजपुरी भाषा का लालित्य आदि में जब अपने प्यारे सीताराम भगवान को गाया तब श्रोता झूम उठे, विभोर हो उठे। श्रोताओं के मुखमण्डल को देखकर लगता था मानो वे इसीलिए तो प्रसन्न हैं ही कि भगवान् की दुर्लभ कथा श्रवण कर रहे हैं इससे भी अधिक भावुक इसीलिए हैं कि उनके प्यारे भारत से एक ऐसे विलक्षण आचार्यश्री पधारे हैं जो भगवत् कथाओं के मर्मज्ञ हैं। सरल सुबोध और अपनी मातृभाषा में निर्मित पूज्यपाद जगद्गुरु जी के गीतपदों तथा भजनों को सुनकर प्रत्येक श्रोता धन्यता का अनुभव करता था।

कथा के विश्राम दिवस पर सिंगापुर के राष्ट्रपति एस० आर० नार्दन महोदय सपत्नीक पधारे। उनकी पूज्यपाद जगद्गुरु जी के प्रति अतिशय विनम्रता दर्शनीय थी। भारत से सिंगापुर पहुँचे पूज्यसन्त विजयकौशल जी महाराज भी कथा श्रवण करने के लिए बद्धासन में देखे गए। पूज्यपाद गुरुदेव ने “राहुल रोड़” नामक पुस्तक का भी लोकार्पण किया। इसके लेखक-उत्तरप्रदेश के श्रीशर्मा जी हैं। भारत लौटने पर सर्वप्रथम पूज्यपाद गुरुदेव ने भारत माता को साष्टांग प्रणाम किया, पश्चात् हरिद्वार में गंगास्नान के पश्चात् ही अन्नजल ग्रहण किया।

उल्लेखनीय है कि १९ सितम्बर से २७ सितम्बर २००९ तक नैमिषारण्य तीर्थ में आयोजित भागवत कथा श्रवण करने के लिए सिंगापुर से भी अनेक यजमानों ने अपनी स्वीकृति दी है।

□□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वादशी	रविवार	मूल	2 अगस्त	—
त्रयोदशी	सोमवार	पूर्वाषाढा	3 अगस्त	सोम प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	मंगलवार	पूर्वाषाढा	4 अगस्त	—
पूर्णिमा	बुधवार	उ०षा०	5 अगस्त	रक्षाबन्धन, संस्कृत दिवस, सत्यनारायणव्रत
पूर्णिमा	गुरुवार	श्रवण	6 अगस्त	पूर्णिमा तिथि की वृद्धि पंचक प्रारम्भ रात 3/7 से

भाद्रपद कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन वर्षा शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शुक्रवार	धनिष्ठा	7 अगस्त	—
द्वितीया	शनिवार	शतभिषा	8 अगस्त	—
तृतीया	रविवार	पू०भा०	9 अगस्त	श्रीगणेश चतुर्थी (संकट चौथ)
चतुर्थी	सोमवार	उ० भा०	10 अगस्त	—
पंचमी	मंगलवार	रेवती	11 अगस्त	पंचक समाप्त 11/17 रात को
षष्ठी	बुधवार	अश्विनी	12 अगस्त	हलषष्ठी
सप्तमी	गुरुवार	भरणी	13 अगस्त	श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत (स्मार्त)
अष्टमी	शुक्रवार	कृतिका	14 अगस्त	श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत (वैष्णव)
नवमी	शनिवार	रोहिणी	15 अगस्त	नन्दोत्सव (गोकुल), भारत स्वतन्त्रता दिवस
दशमी	रविवार	मृगाशिरा	16 अगस्त	सिंहे सूर्य-संक्रान्ति दिवस
एकादशी	रविवार	मृगाशिरा	16 अगस्त	जया एकादशीव्रत (सबका)
द्वादशी	सोमवार	आर्द्रा	17 अगस्त	वत्स द्वादशी
त्रयोदशी	मंगलवार	पुनर्वसु	18 अगस्त	भौम प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	बुधवार	पुष्य	19 अगस्त	—
अमावस्या	गुरुवार	श्लेषा	20 अगस्त	कुशोत्पाटिनी अमावस्या

श्रावण शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शुक्रवार	मघा/पू०फा०	21 अगस्त	चन्द्रदर्शनम्
द्वितीया	शनिवार	उ०फा०	22 अगस्त	—
तृतीया	रविवार	हस्त	23 अगस्त	वाराह अवतार-हरितालिका तीज
चतुर्थी	रविवार	हस्त	23 अगस्त	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत चतुर्थी तिथि का क्षय है।
पंचमी	सोमवार	चित्रा	24 अगस्त	ऋषि पंचमी व्रत
षष्ठी	मंगलवार	स्वाति	25 अगस्त	सूर्य षष्ठी व्रत
सप्तमी	बुधवार	विशाखा	26 अगस्त	—
अष्टमी	गुरुवार	अनुराधा	27 अगस्त	श्रीदुर्गाष्टमी
अष्टमी	शुक्रवार	ज्येष्ठा	28 अगस्त	श्रीराधाष्टमी अष्टमी तिथि की वृद्धि
नवमी	शनिवार	ज्येष्ठा	29 अगस्त	—
दशमी	रविवार	मूल	30 अगस्त	—
एकादशी	सोमवार	पूर्वाषाढा	31 अगस्त	पद्मा एकादशी व्रत (सबका)